

# समरथ



मार्च-अप्रैल 2013 ♦ नई दिल्ली



## नाहि तो जनम नसाई

एक प्रख्यात आलोचक “स्त्री-विमर्श को हाशिए का मुद्दा मानते हैं”। खैर उनका क्या मानना है बहस इससे नहीं है, बहस इससे है कि पिछले 16 दिसंबर को जो गैंगरेप की घटना हुई उसके बाद से वारदातों का सिलसिला अखबारों और टीवी चैनलों की सुर्खियों में तेज़ी से उभरा। ऐसा नहीं है कि ये घटनाएं पहले नहीं होती थीं, लेकिन दामिनी के गैंगरेप के बाद घटनाएं अखबारों और टीवी चैनलों का मुद्दा ज़रूर बनीं और रिपोर्टें बड़े पैमाने पर दर्ज हुईं जो पहले नहीं हुआ करती थीं। अभी इसी हफ्ते दामिनी के साथ जिस नाबालिग लड़के ने क्रूरतम व्यवहार किया था उस पर फैसला 25 जुलाई तक के लिए रिज़र्व कर दिया गया। ज़ाहिर है कि तीन वर्ष से अधिक की सजा उसे नहीं हो सकती और वो सजा उसे सुधारगृह में काटनी होगी जो किसी भी तरह जेल नहीं कहा जा सकता। इस तीन साल में से 16 दिसंबर से लेकर अब तक की अवधि घटा दी जाएगी। और सुधारगृह जहां नाबालिग लड़कों को सिर्फ कुछ हस्तकलाएं सिखाई जाती हैं जिससे वो बाकी की ज़िंदगी बेकारी में न गुजार सकें। यानी इतना घोर कुकृत्य करने के बाद उनकी ज़िंदगी संवारने के सारे इंतजाम किए जाते हैं। फिर से कुकर्म न करें इसके लिए कोई भी व्यवस्था सुधारगृह में मौजूद नहीं है। कोई मनोवैज्ञानिक सलाह के प्रति आज तक सरकार ने कोई गंभीरता नहीं दिखाई। 16 दिसंबर की घटना में शामिल बाकी लोग संभव है बच भी जाएं क्योंकि बयान, वकील, जज अधिकतर “मर्द ही होंगे”। ऐसे में स्त्री-विमर्श हाशिए का मुद्दा है या केंद्र का मुद्दा है यह तय करना हम सब का कर्तव्य है। दलित मुद्दा केंद्र का मुद्दा है। अल्पसंख्यक मुद्दा केंद्र का मुद्दा है। होना भी चाहिए, लेकिन दुनिया की आधी आबादी हर रोज़ अपने घर में, अपने कार्यस्थल पर, सड़क पर, बिस्तर पर हर क्षण जिस उत्पीड़न का शिकार होती है उसकी कल्पना ‘मर्द’ नहीं कर सकते। ऐसे में समरथ के तमाम अंकों का पहला पन्ना अगले 16 दिसंबर तक इसी विमर्श के नाम समर्पित रहेगा। माया एंजेलो की कविता Still I Rise का हिंदी अनुवाद इसी विमर्श की कड़ी है। उत्पीड़न सहना नहीं है बल्कि उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष का नारा बुलंद करना है। कोई बदला नहीं, पुरुष से घृणा नहीं लेकिन अपने ऊपर उत्पीड़न भी नहीं। हक़ की लड़ाई जारी रहे।

## फिर से उठती मैं हूं खुद अपनी बुलंदी बनकर

### ■ माया एंजेलो

झूठ और मक्क की चादर में लिटा कर मुझको  
गर्क कर दो मुझे इतिहास के पन्नो अभी  
रौंद कर कदमों तले धूल बना दो मुझको  
जिस तरह धूल उठे मैं भी उठूंगी फिर से  
तुम मेरे अज़म से बतलाओ कि डरते क्यों हो ?  
इतने नाशाद हो क्यों इतने परेशां क्यों हो ?  
‘क्योंकि हर एक कदम मेरा बताता है तुम्हें  
जैसे मैं तेल का एक पूरा ज़खीरा ले कर  
अपने कमरे को उजालों की जिला देती हूँ  
जिस तरह रोज़ चमकता सरो पर सूरज  
जिस तरह चाँद निकलता शबों के ऊपर  
जिस तरह पुख्ता इरादे हो मेरे दामन में  
उस तरह फिर से उठूंगी मैं इसी दुनिया में

क्या यह ख्वाहिश है कि मैं टूट के टुकड़े होऊँ  
और नज़रों मेरी झुक जायें और सर झुक जाये ?  
मेरे रोने की सदा सुन के सहम के आखिर  
शाने झुक जायें मेरे आंसू के कतरे की तरह

क्यों तुम्हें चोट पहुँचती है मेरे तेवर से  
क्या कोई खौफ नहीं तुमको मेरे इस रुख से  
'क्योंकि यूँ हंसती हूँ मैं जैसे कि मेरे आँगन में  
कोई सोने का ज़खीरा उतर आया हो मेरे दामन में'

अपने लफ़्ज़ों से मुझे कितना ही ज़ख्मी कर लो  
अपनी नज़रों से मेरे जिस्म को छलनी कर दो  
अपनी नफरत से मुझे कितना ही तुम क़त्ल करो  
मैं उभर आऊँगी कि हूँ ताज़ा हवा का झोंका

क्यों तुम्हें चुभता है चढ़ता हुआ मेरा यौवन  
तुमको हैरान सा करता है क्या मेरा यौवन ?  
क्यों कि मैं रक्स खो जाती हूँ एहसास जो हो  
बीच जांघों के मेरी जैसे कि हीरा चमके

पिछली तारीखों में जो शर्म थी उस से बढ़ कर  
फिर से उठती मैं हूँ खुद अपनी बुलंदी बनकर  
दर्द के माज़ी को उठ कर उसे ठोकर देकर  
फिर से उठती मैं हूँ खुद अपनी बुलंदी बनकर

काला सागर हूँ तड़पती हूँ उमड़ती हूँ मैं  
फैल जाती हूँ मैं लहरों में मचलती हूँ मैं  
खौफ और दर्द की रातों से परे जाकर मैं  
फिर से उठती मैं हूँ खुद अपनी बुलंदी बनकर  
सुब्ह का तेज़ और शफ़फ़ाफ़ उजाला बनकर  
फिर से उठती मैं हूँ खुद अपनी बुलंदी बनकर  
अपने पुरखों से कमाई हुई मीरास लिए  
और गुलामों की उम्मीदें लिए और ख्वाब लिए  
फिर से उठती मैं हूँ खुद अपनी बुलंदी बनकर

(अनुवाद : खुर्शीद अनवर)

# दमन के नए हथियार

■ सुभाष गाताडे

बारामूला के इक्कीस साल के आमिर कबीर बेग और श्रीनगर के सोलह वर्षीय जावेस अहमद डेन्थो में क्या समानता ढूंढी जा सकती है? यों तो ये दोनों युवक एक दूसरे को जानते भी नहीं होंगे, मगर इस मामले में दोनों एक कहे जा सकते हैं कि छर्रे की बंदूकों ने उन्हें दृष्टिहीन बना दिया है। सितंबर 2010 में अपने दोस्त के घर जा रहे आमिर को छर्रे लगे थे, जब पुलिस ने कथित तौर पर पथराव कर रही भीड़ पर छर्रे बरसाए थे। उन्हीं दिनों ट्यूशन पढ़ने के लिए जा रहा तेरह वर्षीय जावेस भी पुलिस द्वारा बंदूकों से मारे गए छर्रों के चलते अपनी दाहिनी आंख खो बैठा।

यह अकेले आमिर या जावेस की दास्तान नहीं है। दंगों या आंदोलनों को काबू में करने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली छर्रे की बंदूकें क्या कश्मीर के युवाओं की दृष्टि के लिए खतरनाक साबित होती दिखती हैं? श्रीनगर के महाराजा हरीसिंह अस्पताल की रिपोर्ट इस मामले में काफी विस्फोटक है, जो बताती है कि 2010 के आंदोलन में शामिल रहे पैंतालीस युवाओं ने अपनी आंखें हमेशा के लिए खो दी हैं। अफजल गुरु को फांसी पर लटकाए जाने के बाद जो बवाल वहां शुरू हुआ, उसमें भी अब तक बारह मामले आ चुके हैं जिनमें दृष्टि के लौटाए जाने की संभावना नाममात्र की दिखती है। एक संवाददाता से बातचीत में दृष्टिविज्ञान विभाग के प्रमुख ने बताया कि इन आंकड़ों में घाटी के अन्य अस्पतालों में इसी तरह घायल होकर भर्ती हुए लोगों की तादाद शामिल नहीं है।

यह विडंबना ही है कि दंगा नियंत्रण के लिए गैर-जानलेवा हथियार के तौर पर प्रयुक्त छर्रे की बंदूकों के चलते अब तक तीन सौ से अधिक युवाओं को घातक चोटें लगी हैं। दंगा नियंत्रण में प्रयुक्त पेप्पर गैस यानी मिर्च के धुएं से भी बच्चों और बुजुर्गों को अलग तरह की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। कई मामलों में इसने दमा के मरीजों में इतनी घबराहट पैदा की है कि ऐसे मरीज मर गए हैं। स्पष्ट है कि चाहे छर्रे की बंदूकें हों या मिर्च का धुआं, इनके बढ़ते इस्तेमाल ने घाटी में जनान्द्रोश को बढ़ावा दिया है और अब आंसू गैस के गोले और पानी की बौछार जैसे दंगा नियंत्रण के अन्य साधनों के इस्तेमाल पर जोर दिया जा रहा है।

‘निरापद’ हथियारों की कतार में अब ‘गंदगी बम’ की भी बात हो रही है। दरअसल, गृह मंत्रालय इसी नए नुस्खे को

आजमाने पर गंभीरता से विचार कर रहा है ताकि उग्र हो रही भीड़ को काबू में किया जा सके। तकनीकी जुबां में उन्हें ‘स्कुंक बम’ कहा जाता है, जिन्हें अगर बड़े समूह पर दाग दिया जाए यानी फायर किया जाए तो वे भयानक बदबू छोड़ते हैं, जो प्रदर्शनकारियों को वहां से तितर-बितर होने के लिए मजबूर कर देते हैं। कहा जा रहा है कि इजराइल की हुकूमत द्वारा फिलस्तीनी अवाम को नियंत्रित करने के लिए प्रयुक्त हो रही इस तकनीक का इस्तेमाल अब जल्द ही भारत की सड़कों पर भी दिखाई देगा।

ध्यान रहे कि स्कुंक बम जैसे गैर-प्राणघातक कहे जाने वाले हथियारों की तरफ गृह मंत्रालय और राज्यों के पुलिस महकमों का ध्यान उस वक्त गया जब जम्मू-कश्मीर में 2010 में हुए प्रदर्शनों में एक सौ दस से अधिक लोगों की मौत होने के समाचार आए।

यह तथ्य भी काबिल-ए-गौर था कि जब पुलिस प्रदर्शनकारियों पर गोलियां बरसाती है और जब आतंकियों पर फायरिंग करती है, तो मरने वालों की तादाद प्रदर्शनकारियों के मामले में अधिक होती है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2011 में पुलिस की एक सौ उनचास बार चलाई गोलियों में पैंतीस नागरिक मारे गए, जबकि उग्रवादियों/आतंकियों से मुठभेड़ के दो सौ इक्कीस मामलों में छब्बीस आतंकी मारे गए। स्कुंक बम का इस्तेमाल अभी प्रस्तावित है।

भारत में गैर-जानलेवा कहे जाने वाले जो हथियार इस्तेमाल होते हैं उनमें पंप एक्शन गन्स, चिली ग्रेनेड्स और इलेक्ट्रिक बैटन्स अधिक चर्चित हैं। विभिन्न प्रांतों की सरकारें इस मसले पर अधिक सक्रिय दिखती हैं। समाचार के मुताबिक गंभीर अपराध को कम करने के नाम पर पिछले दिनों पंजाब पुलिस ने टेजर गनों की खेप मंगाई है। पंजाब पुलिस ने अपनी दो नई बटालियनों को टेजर गनों से लैस करने का निर्णय लिया है। पंजाब सरकार के नक्शेकदम पर जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, मध्यप्रदेश और राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड के अपहरण विरोधी दस्ते ने भी इन टेजर गनों के लिए आर्डर दिया है। गौरतलब है कि राज्य सरकारें ही नहीं, सेना की तरफ से भी इसी किस्म के गैर-पारंपरिक हथियारों के लिए बाहरी निर्माताओं को जानकारी भेजने के लिए लिखा गया है- जिसमें कहा गया है कि भारतीय सेना ऐसे गैर-प्राणघातक हथियारों को खरीदना चाहती है - मसलन ऐसी बंदूकें जो आंसू

गैस, स्मोक ग्रेनेड और रबर बुलेट जैसी 'बारूद' को छोड़ें, जो सामने वाले को गतिहीन बना दे।

रक्षा मंत्रालय से स्वीकृति मिले इस प्रस्ताव में इसी बात का उल्लेख किया गया है कि चूंकि आंतरिक सुरक्षा के कामों के लिए सेना का अधिक इस्तेमाल हो रहा है तो ऐसे गैर-प्राणघातक हथियार 'लोगों के दिलो-दिमाग को जीतने में' अधिक कारगर होंगे।

वैसे हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे गैर-प्राणघातक हथियार उतने निरापद नहीं होते, जैसा दावा किया जाता है। अभी फरवरी में खबर आई थी कि जुलूसों, प्रदर्शनों को नियंत्रित करने के अघातक हथियारों से अमेरिका में दस साल में पांच सौ लोगों की मौत हुई। इस तरह मारे गए लोगों में 43 वर्षीय जानी कमाही पांच सौवां व्यक्ति था, जिसकी अलबामा में पिछले दिनों पुलिस द्वारा प्रयोग किए गए टेजर के झटकों से मौत हुई।

एमनेस्टी इंटरनेशनल की तरफ से उस वक्त जारी बयान के मुताबिक वर्ष 2001 से अब तक लगभग पांच सौ लोग अमेरिका में ही इन झटकों के कारण मार दिए गए हैं, जिनमें से अधिकतर मामलों में वे किसी घातक हथियार से लैस नहीं थे और पुलिस के लिए किसी भी तरह का खतरा नहीं हो सकते थे। लाजिमी था कि इस संगठन ने अमेरिका से यह अपील की कि वह इस हथियार का इस्तेमाल कम करे और टेजर के इस्तेमाल के खिलाफ कड़े कानून बनाए। कमाही की मौत ने नवंबर 2011 में इसी तरह पुलिस के हाथों मारे गए रोजर एंथनी की याद ताज़ा कर दी, जो बधिर था और इसीलिए साइकिल से गिरने के बाद वह पुलिस के निर्देश पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दे सका था। बस इसी 'अपराध' के कारण पुलिस ने उस पर टेजर गन चलाई थी।

गौरतलब है कि टेजर ऐसा इलेक्ट्रोशॉक हथियार होता है जो बिजली के प्रवाह को निर्मित करता है और स्नायुओं के स्वेच्छिक नियंत्रण को बाधित करता है और इस तरह यह प्रदर्शनकारी या संभावित खतरनाक व्यक्ति को मंद या कुछ समय तक के लिए बिल्कुल बेकार कर देता है। इस प्रभाव को पंगुपन या विकलांगता कह सकते हैं। आधिकारिक तौर पर भले ही कुछ कहा जाता रहे, मगर पहले दिन से यह बात मालूम रही है कि अगर किसी के सीने को निशाना बना कर इस हथियार को चलाया जाए तो उसे दिल का दौरा पड़ने की भी आशंका रहती है।

निश्चित ही गैर-पारंपरिक कहे गए हथियारों में अकेले टेजर गन नहीं है। विज्ञान की चर्चित पत्रिका 'न्यू साइंटिस्ट' ने तीन साल पहले के अपने अंक में ऐसे ही चंद हथियारों की चर्चा की थी। इसके मुताबिक पूंजीपतियों का एक हिस्सा इन दिनों एक ऐसी माइक्रोवेव किरण गन तैयार करने में मुब्तिला है जो सीधे लोगों के सिर में आवाज़ पहुंचा देगी। इस उत्पाद को अमेरिकी सेना द्वारा 'युद्ध के अलावा अन्य कामों में' और भीड़

नियंत्रण के लिए इस्तेमाल किया जाएगा।

इसमें माइक्रोवेव ऑडियो इफेक्ट का इस्तेमाल किया जाता है जिसमें छोटी माइक्रोवेव लहरें तेजी से टिशू को गरम करती हैं और सिर में एक शॉकवेव पैदा करती हैं। इसकी एक अन्य विशिष्टता, जिसको लेकर अमेरिकी रक्षा विभाग बहुत प्रसन्न है, यह है कि इस किरण को इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से संचालित किया जाता है, जो एक साथ कई निशानों तक पहुंच सकती है।

इस माइक्रोवेव गन से किरण फेंकी जाएगी तो पता चलेगा कि भाषण देते-देते मजदूर नेता वहीं बेहोश होकर गिर गया और उसके इर्द-गिर्द खड़े तमाम मजदूर भी इसी तरह धराशायी हो गए। इस बात के मद्देनजर ऐसी गन का विरोध होगा और उसे मानवाधिकारों का हनन बताया जाएगा, इसे स्वीकार्य बनाने की कवायद भी चल रही है। कहा जा रहा है कि इसके गैर-सैनिक उपयोग भी हो सकते हैं, जैसे कहीं टिड्डी दल का हमला हो जाए तो ऐसे कीड़ों को भगाया जा सकता है। इतना ही नहीं, यह बात भी रेखांकित की जा रही है कि ऐसी तकनीक से उन लोगों को लाभ हो सकता है जिनकी सुनने की क्षमता ठीक नहीं है।

कोई भी देख सकता है कि इन गैर-पारंपरिक हथियारों के आविष्कार के ज़रिये अमेरिकी सैन्यवाद अब मानवाधिकार उल्लंघन की नई ऊंचाइयों पर पहुंच रहा है। अब लोगों को 'शांत' करने की अपनी योजनाओं के तहत सीधे मानवीय शरीर और मन की सीमाओं का उल्लंघन कर रहा है। इस नई किस्म की 'युद्धभूमि' पर अपना वर्चस्व कायम करने में विज्ञान और अकादमिक जगत न केवल केंद्रीय भूमिका निभा रहे हैं, बल्कि बिल्कुल साथ-साथ चल रहे हैं। दमन के लिए पेशेवर वैज्ञानिकों और तकनीकविदों की सेवाएं ली जा रही हैं। 'गैर-प्राणघातक' हथियारों के निर्माण को सरकारों और कॉरपोरेट प्रतिष्ठानों की तरफ से आगे बढ़ाया जा रहा है और इसमें कई अग्रणी शिक्षा संस्थान भी जुड़े हैं। लोगों को नियंत्रित करने, चोट पहुंचाने, यातना देने और यहां तक कि उन्हें मार डालने के नए तरीके ईजाद किए जा रहे हैं।

दूसरी ओर, अमनपसंद विचारकों और वैज्ञानिकों में इन गैर-पारंपरिक हथियारों को लेकर चिंता बढ़ रही है। चर्चित विश्लेषक टाम बर्गहार्ड द्वारा संपादित किताब 'पोलिस स्टेट अमेरिका' में प्रकाशित लेख 'नान-लेथल वारफेअर' इस परिघटना पर बखूबी रोशनी डालता है। उसके मुताबिक 'यह नया फासीवाद जैव निर्धारणवादी विचारधारा और अग्रगामी तकनीकी साधनों का इस्तेमाल करते हुए शरीर पर हमला करता है और हर नई तकनीकी प्रगति और राजनीतिक आवश्यकताओं के साथ अपने संभावित लक्ष्यों का दायरा बढ़ाता जाता है।' वह दरअसल 'जादुई गोली' की तलाश में रहता है जो उसके शिकार को 'अक्षम' बना दे। अगर अमेरिका में टेजर गन से इतनी मौतें होती हैं, तो भारत में क्या होगा, जहां की पुलिस पहले ही काफी असंवेदनशील है?

## कौन सा इस्लामी आतंकवाद?

■ खुशीद अनवर

काफी पहले एक मित्र ने मुझे अल्लाह हाफिज कहा। तो सोचा इस पर लिखूं। बचपन से खुदा हाफिज सुनते आये थे अचानक कब खुदा गायब हुआ और अल्लाह आ गया हाफिज में। इलाहबाद का हूं जहां सिर्फ मुस्लिम नहीं हिंदू भी बड़े आराम से खुदा हाफिज कहते रहे हैं।

### इसकी पृष्ठभूमि

1978 में जिया उल हक सत्ता में आया पाकिस्तान में उसने पहला काम किया सऊदी अरबिया के साथ सम्बन्ध गहरे करने का। अमरीकी डॉलर के साथ पेट्रो डॉलर दरकार थे। आते साथ उसने लायलपुर का नाम फैसलाबाद रखा किंग फैसल के नाम पर। किंग फैसल की मौत 1975 में हुई थी फौरन बहुत बड़ी रकम आई पाकिस्तान। तुरंत बाद 1979 में दो बड़ी घटनाएं हुई। सोवियत फौजों का अफगानिस्तान आना और खुमैनी का ईरान में सत्ता संभालना। दोनों अमरीका और सौदे के लिए खतरनाक था। ईरान शिया बाहुल्य देश और खुमैनी शिया लीडर और सारे कानून शिया थिओलॉजी के लागू हुए। यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि ईरान की जबान फ़ारसी है और खुदा लफज़ फ़ारसी का है। सऊदी अरबिया की जबान अरबी है और अल्लाह लफज़ अरबी का है। जिया को साबित करना था कि वह घोर ईरान विरोधी है। पाकिस्तान में फटाफट सारे ऐसे काम हुए जिससे सऊदी अरब और अमरीका खुश हों। पाकिस्तान अचानक इस्लाम से सुन्नी इस्लाम की तरफ बढ़ गया। अहमदिया, बोहरा, कादियानी और ज़रा बाद में शिया समुदायों को इस्लामी दायरे से हटाने की मुहिम भी शुरू हो गयी। इसके अलावा जो मूर्खतापूर्ण कदम था वह जिया का मीडिया (रेडियो, टीवी, अखबार) को निर्देश कि खुदा कि जगह अल्लाह इस्तेमाल करें। पहली बार पाकिस्तान रेडियो पर

1979 में सुना गया “अल्लाह हाफिज”। धीरे-धीरे खुदा ने गठरी संभाल ली और अल्लाह को अपनी सीट दे दी।

**क्या इस्लामी आतंकवाद जैसी कोई चीज है?**

**इतिहास से**

अप्रैल 1900 में अंग्रेजों ने यूनाइटेड प्रोविंस में फ़ारसी लिपि कि जगह नागरी चलाने का आदेश दिया। यहाँ के समृद्ध मुस्लिमों ने इसे अपने कल्चर पर हमला समझा जबकि उर्दू उतनी ही हिंदुओं कि भाषा थी जितनी मुसलमानों

**ईरान की जबान फ़ारसी है और खुदा लफज़ फ़ारसी का है। सऊदी अरबिया की जबान अरबी है और अल्लाह लफज़ अरबी का है। जिया को साबित करना था कि वह घोर ईरान विरोधी है। पाकिस्तान में फटाफट सारे ऐसे काम हुए जिससे सऊदी अरब और अमरीका खुश हों। पाकिस्तान अचानक इस्लाम से सुन्नी इस्लाम की तरफ बढ़ गया। अहमदिया, बोहरा, कादियानी और ज़रा बाद में शिया समुदायों को इस्लामी दायरे से हटाने की मुहिम भी शुरू हो गयी। इसके अलावा जो मूर्खतापूर्ण कदम था वह जिया का मीडिया (रेडियो, टीवी, अखबार) को निर्देश कि खुदा कि जगह अल्लाह इस्तेमाल करें। पहली बार पाकिस्तान रेडियो पर 1979 में सुना गया “अल्लाह हाफिज”। धीरे-धीरे खुदा ने गठरी संभाल ली और अल्लाह को अपनी सीट दे दी।**

की। लेकिन एलीट मुस्लिम इसे अपनी बपौती समझता था। उधर 1905 में बंग भंग हुआ। पूर्वी बंगाल मुस्लिम बाहुल्य और पश्चिम बंगाल हिंदू बाहुल्य। अंग्रेज जानता था कि इस से क्या होगा, हुआ वही 1906 में मुस्लिम लीग कि ढाका में स्थापना हुई। स्थापना करने वाले कौन थे यह गौरतलब है। या तो वे जो सर कि उपाधि पा चुके थे या नवाब। आम इंसान को इन से दूर रखा गया। अब शुरू हुई साम्प्रदायिकता की खुली

राजनीति। इन नवाबों और समृद्ध नोबिलिटी को लगा कि अब हाथ से सत्ता जा रही है। मुस्लिम लीग ने अब बंगाल के साथ-साथ यूनाइटेड प्रोविंस और पंजाब में अपनी जड़ें मजबूत करनी शुरू की।

1915 में हिंदू महासभा के गठन के बाद दोनों ताकतें एकदम सामने आ गयीं और सिलसिला शुरू हुआ हिंसा का।

अब अत्यंत महत्वाकांक्षी नेता लियाकत अली खान इसी दौरान 1923, में लीग में शामिल हो गया और मामला साम्प्रदायिक रंग लेने लगा।

इसने 1941, में जमात-ए-इस्लामी का गठन किया। यह पहला वहाबी कट्टरपंथ नेता था जिसने बाद में साम्प्रदायिकता

और हिंदू समेत तमाम गैर मुसलमानों के खिलाफ नफरत का बीज बोया। इसी के प्रभाव में मनगढंत इस्लामी कानून बने। आज भी वहाबी कट्टरपंथी इसको सर आँखों पर बिठाते हैं।

सऊदी अरब के साथ सम्बन्ध बनाने में इसकी बड़ी भूमिका रही।

इसी की परंपरा को आगे ले जाने वाला और सेना, आईएसआई समेत पूरे पाकिस्तान को सांप्रदायिक रूप देने वाला जिया उल हक था। हिंदू नफरत के बीज यहाँ से मजबूत हुए पाकिस्तान में। इसी दौरान मदरसों में पाठ्यक्रम बदले जो “काफिरों” के खिलाफ थे। यहीं से निकलना शुरू हुए भारत से नफरत करने वाले और हिंदुओं से नफरत करने वाले। लेकिन इनका निशाना अभी भी गैर वहाबी (शिया, बोहरा कादियानी, अहमदिया मुस्लिम) रहे। यह हिंदुओं और इन मुस्लिमों को एक ही नज़र से देखते हैं।

### वर्तमान

अब जरा दूसरा पहलू। इस्लाम में कुल 72 सेक्ट हैं। इसमें शिया और सुन्नी सबसे बड़े सेक्ट हैं। सुन्नी सेक्ट में तो तरह-तरह के अनुयायी हैं। बहुत बड़ी तादाद में पारंपरिक सुन्नी और बेहद छोटी तादाद वहाबी सुन्नी की। (कुल लगभग सुन्नी समुदाय का पांच प्रतिशत) जिया-उल-हक वहाबी था और पूरा सऊदी अरब वहाबी राष्ट्र है। धरती पर एक मात्र इसने जब सोवियत संघ के विरोध में फौज खड़ी की तो उसमें वहाबी ही रहे। याद रहे कि गैर वहाबी लोग इन संगठनों में न तब जा सकते थे न अब। मतलब पूरे इस्लामी परंपरा के पांच प्रतिशत लोगों में से ही। अब इन पांच प्रतिशत लोगों में सारे के सारे तो आतंकवादी नहीं हो सकते। दुनिया में वहाबी समुदाय के अलावा केवल एक ही बंदूकधारी संगठन है वह है हिजबुल्लाह जो कि लेबनॉन में है और सिर्फ इजराइल से लड़ता है फिलिस्तीन के लिए ... इसके अलावा कहीं इसने पटाखा तक नहीं फोड़ा।

यहाँ एक बात और महत्वपूर्ण कि 1979 के पहले आतंकवाद की एक भी घटना कहीं नहीं हुई।

सऊदी अरब खाड़ी का सबसे धनवान और सब से प्रतिक्रियावादी देश है और अमरीका का सब से पुराना मित्र। सोवियत संघ के विघटन के बाद सारे रास्ते साफ हो गए। अब रहा सऊदी अरब और पाकिस्तान। बिना इसकी मदद के अमरीका इराक और अफगानिस्तान में नहीं घुस सकता था। बिना इसकी मदद के अमरीका इजराइल के समर्थन में नहीं खड़ा हो सकता।

क्या कभी कोई ऐसा आतंकवादी नाम सुना है जो दक्षिण एशिया, सऊदी अरब, या उसके आस-पास से बाहर

का हो? ओसामा बिन लादेन। यह कमबख्त बिन बादल बिन बरसात कहाँ का नाम है? वही नेता क्यों बना।

अब इसके लिए पैसा कहां से आता है लाखों करोड़। और लोग कौन हैं जो आत्मघाती बन जाते हैं। याद रहे कि आज तक जितने आतंकवादी पकड़े या मारे गए सब गरीब घरों से आये। सारे के सारे। आत्मघाती लोगों कि उम्र पर ध्यान देना जरूरी है।

इन लोगों को हथियार पकड़ाए जाते हैं जो सऊदी अरबिया ने चीन से अरबों में खरीदे और अमरीका ने बराबर ला-ला कर दिए सोवियत फौजों के अफगानिस्तान में आने के बाद से। और आज यही असलहे तालिबान सहित तमाम आतंकवादियों के हाथ में मुसलमानों का ही कत्ल करने के काम आ रहे हैं।

अफगानिस्तान में तालिबान ने 1 जनवरी से लेकर अब तक लगभग 900 शिया हलाक किये ...वहाँ हजारा शिया होते हैं। क्यों ऐसा हुआ। क्योंकि हजारा शिया है और ईरान शिया बाहुल्य राष्ट्र। हमारे मौनी बाबा मनमोहन की ईरान यात्रा के मद्देनज़र ....राजनैतिक खेल पाकिस्तान का ...गौर कर के देखो।

जमात और देवबंद आज़ादी से पहले विभाजन के विरोधी थे। विभाजन के बाद पाकिस्तान बनते समय दो मौलाना, मौलाना मौदूदी और मौलाना अबुल हसनात पाकिस्तान गए और 1948 से जहर घोलना शुरू किया। मगर कामयाबी मिली जिया उल हक के आने के बाद।

इन वहाबियों ने सुन्नी समुदाय को बेहद बदनाम किया क्योंकि यह भी हैं तो सुन्नी। आज तक इन लोगों ने जितने हमले किये और जितने कत्ल किये उसमे से 60 प्रतिशत शिया समुदाय से तो हैं पर अहमदिया, बोहरा, इस्माइली के साथ-साथ सुन्नी समुदाय भी कम निशाना नहीं बना है।

वहाबी सूफ़ी मज़ारों से नफरत करते हैं और बहुत बड़ी सुन्नी जनसंख्या सूफ़ी संतों की मज़ारों पर जाती है। बाबा बुल्ले शाह, बाबा फरीद कौन इन वहाबियों के निशाने से बच पाया? इंसानी एकता के प्रतीक इन सूफ़ियों के मज़ारों को जंग का मैदान बनाया इन आतंकी वहाबियों ने।

भारत में हुई कुछ आतंकी घटनाओं को एक तरफ रख कर देखा जाये तो 1979 के बाद अब तक आतंकी गतिविधि. यों में जो लाख से ऊपर मारे गए लोग हैं उनमे इस्लाम के अनुयायियों का प्रतिशत क्या है? लगभग 98 प्रतिशत।

अब सवाल है कि जिसे हम इस्लामी आतंकवाद कहते हैं, और जिसके नाम पर कहा जाता है “सारे मुसलमान आतंकवादी होते हैं” वह कौन लोग हैं? कितने प्रतिशत हैं? किसे मार रहे हैं? वह खुद मुसलमान हैं क्या?

# नादानों पर अत्याचार

■ अंजलि सिन्हा

मशहूर सितारवादक अनुष्का शंकर ने कुछ समय पहले महिलाओं के खिलाफ हिंसा विरोधी अभियान के एक कार्यक्रम में हिस्सेदारी करते हुए अपने व्यक्तित्व का एक अलग पहलू उजागर किया था। उन्होंने बताया कि मेरे साथ बचपन में बहुत कुछ ऐसा हुआ, जिससे निपटना मैं नहीं जानती थी। उनके परिवार के किसी आत्मीय द्वारा उनके साथ बचपन में की गई हिंसा का वह जिक्र कर रही थीं। सुश्री अनुष्का शंकर की वह टिप्पणी पिछले दिनों नए सिरे से मौजूं हो उठी, जब पांच साल की बच्ची के साथ यौन अत्याचार का मामला सामने आया। पूर्वी दिल्ली के गांधीनगर की वह पांच साल की बच्ची (जिसे गुडिया नाम से संबोधित किया गया है) कैसे निपटती, जब चॉकलेट के बहाने उसे वह दरिंदा बुला ले गया और फिर उसके साथ तरह-तरह से अत्याचार हुआ। अपने तई तो वह उसे मार कर भाग गया था। यह अलग बात है कि चौथे दिन उसके रोने की आवाज उसी बिल्डिंग के किसी हिस्से से आती उसके पिता को सुनाई दी और फिर मामला उजागर हुआ। इसी तरह अलीगढ़ की छह साल की बच्ची को तो दरिंदे ने बलात्कार के बाद जान से ही मार दिया। जब मां थाने शिकायत लेकर पहुंची तो पुलिसवालों ने उसके साथ बदसलूकी की। जिस दिन गांधीनगर के बच्ची की खबर सुर्खियां बनी थी, उसी दिन मध्य प्रदेश के दतिया और सिवनी जिले की खबरें थीं, जिसमें एक सात साल की बच्ची को बलात्कार के बाद हत्या कर खेत में फेंक दिया था तो एक चार साल की बच्ची का अपहरण हुआ था और अगले दिन वह लहुलुहान हालत में सुबह खेत में पाई गई थी।

फेहरिस्त बहुत लंबी है। छोटी बच्चियां लगातार हवस का शिकार बनती जा रही हैं। अब बच्चों के अपहरण की घटनाएं भी बढ़ती जा रही है। पिछले 108 दिन में 617 बच्चे गुम हुए हैं तो इस साल जनवरी से 7 अप्रैल तक बलात्कार के 393 मामले दर्ज हुए हैं। पिछले दिनों एशियन सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स ने अपनी एक ताजा रिपोर्ट में बताया कि भारत में बच्चों के खिलाफ यौन हिंसा की घटनाओं ने महामारी का रूप धारण कर लिया है। नेशनल क्राइम्स रेकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों पर आधारित 56 पेजी प्रस्तुत रिपोर्ट बताती है कि 2001 से 2011 के दरम्यान बाल यौन अत्याचार की 48,838 घटनाएं रिपोर्ट की गईं और दस सालों के अंदर ऐसी घटनाओं में 336 फीसदी की बढ़ोतरी हुई। अगर 2001 में 2,113 मामले सामने आए थे तो 2011 में 7,112 मामले सामने आए। रिपोर्ट स्पष्ट करती है कि चूंकि अधिकतर घटनाएं रिपोर्ट नहीं होती, इसलिए वास्तविक संख्या इससे कहीं अधिक है, जबकि बच्चे अन्य किस्म के यौनिक हमलों का भी शिकार बनते हैं। इस बात पर गंभीरता से विचार होना ही चाहिए कि बच्चों के साथ यौन हिंसा पैदा करने वाले हैवान किस मिट्टी के बने होते हैं। गौर करने लायक

बात है, दिल्ली की इस घटना में बच्ची से हैवानियत करने वाले व्यक्ति की उम्र 24 साल है और फर्शविहार के सामूहिक बलात्कार वाली घटना के आरोपियों की उम्र 20-21 साल है। इसी तरह अन्य घटनाओं में भी युवावस्था की दहलीज पर पहुंचने वाले युवकों के कारनामे सामने आ रहे हैं। यह सब समाज और घर तथा स्कूल आदि पर बड़ा सवाल खड़ा करता है कि इनका बचपन कैसे बीता, स्कूल ने इन्हें क्या सिखाया, समाज में कैसी परवरिश मिली?

एक तरफ ऐसी घटनाओं में बढ़ोतरी हो रही है और दूसरी तरफ पुलिस प्रशासन है कि तमाम कोशिशों के बावजूद सुधरने का नाम नहीं ले रहा है और कानून का अंकुश दिखे तो ऐसी तमाम घटनाओं पर रोक लग सकती है, लोग ऐसा अत्याचार करने से डर सकते हैं। जबकि, इस बीच की कई घटनाओं में स्पष्ट रूप से उनकी लापरवाही के साथ पीड़ितों के आत्मीयों के साथ दुर्व्यवहार की घटनाएं सामने आई हैं। समय से रिपोर्ट दर्ज नहीं करने से लेकर थाने से पीड़ित पक्ष को ही भगा देने तथा मुंह बंद रखने के लिए रूपए की पेशकश करने की घटनाएं भी हुई हैं। ऐसे सभी मामलों में लोगों के साथ किस तरह संवेदनशीलता के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। इसके बारे में कागजों पर बहुत कुछ लिखा जा चुका हो, मगर हकीकत में इनकी हिम्मत इतनी बढ़ रही है कि वे प्रदर्शनकारियों को थप्पड़ जड़ने से भी बाज नहीं आ रहे हैं। इन्हें शायद अभी भी यह सख्त निर्देश नहीं मिला है कि बिना देरी और औपचारिकताओं में पड़े बिना पहले शिकायत दर्ज करना अनिवार्य है। इन्हें ऐसा वातावरण बनाना चाहिए कि आम लोग अपनी शिकायतें लेकर आसानी से पुलिस थानों में पहुंचें, उनकी सहायता करने वाले बनें, उल्टे वही लोग सलाह देते हैं कि पैसे ले लो, कहीं बेटी की शादी करा दो, कहां बेइज्जती करवाते फिरोगे? गांधीनगर मामले में पुलिस पर कार्रवाई करने की, संबंधित पुलिसकर्मियों को दंडित करने की जो मांग उठी है, उस पर सरकार को बिना हीला हवाली के कदम उठाना चाहिए, ताकि शेष पुलिसकर्मियों के लिए एक सबक मिले। याद रहे कि यौन हिंसा को अंकुश लगाने को लेकर पिछले दिनों बनी वर्मा कमेटी ने यह स्पष्ट सुझाव दिया था कि ऐसे पुलिसकर्मी या जिम्मेदार अधिकारी जो यौन हिंसा की रिपोर्ट दर्ज करने में आनाकानी करें, उनके खिलाफ न केवल मुकदमा कायम हो, बल्कि उन्हें कम से कम पांच साल की सजा मुकर्रर करने का सुझाव दिया था।

पुलिस की पूरी कार्य प्रणाली बदलने पर असें से बात होती रही है। इस मुद्दे पर वर्मा कमेटी ने भी जोर दिया था कि यदि पुलिस और न्याय व्यवस्था ठीक से काम करे तथा न्यूनतम संवेदनशीलता बरते तो पुराने कानून भी कारगर हो सकते हैं। ताजी घटनाओं में पुलिस का व्यवहार यही उजागर करता है कि अभी इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी है।



# जन कलाकार थे बलराज साहनी

■ ख्वाजा अहमद अब्बास

दुर्भाग्य से हमारे देश में जाने माने चित्रकारों, अभिनेताओं तथा गायकों को “जन कलाकार” का खिताब देने का चलन ही नहीं है। उन्हें भी इंजीनियरों, डाक्टरों, ठेकेदारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और यहां तक कि बिल्कुल अनजाने लोगों के भी साथ खड़ा कर पद्मश्री तथा पद्मभूषण के खिताब दे दिए जाते हैं, जो सृजनात्मक, कलात्मक गतिविधियों के क्षेत्र में उनके अनोखे योगदान की अलग से कोई पहचान ही नहीं करते हैं।

बहरहाल, अगर भारत में कोई ऐसा कलाकार हुआ है जो “जन कलाकार” के खिताब का हकदार है, तो वह बलराज साहनी ही हैं। उन्होंने अपनी ज़िंदगी के बेहतरीन साल, भारतीय रंगमंच तथा सिनेमा को घनघोर व्यापारिकता के दमघोंटू शिकंजे से बचाने के लिए और आम जन के जीवन के साथ उनके मूल, जीवनदायी रिश्ते फिर से कायम करने के लिए समर्पित किए थे।

बहुत से लोग इस पर हैरानी जताते थे कि बलराज साहनी प्रकटतः कितनी सहजता व आसानी से आम जन के बीच से विभिन्न पात्रों को मंच पर या पर्दे पर प्रस्तुत कर गए हैं, चाहे वह ‘धरती के लाल’ का कंगाल हो गए किसान का बेटा हो या ‘हम लोग’ का कुठित तथा गुस्सेल नौजवान; चाहे वह ‘दो बीघा ज़मीन’ का हाथ रिक़शा खींचने वाला हो या ‘काबुलीवाला’ का पठान मेवा बेचने वाला या फिर चाहे इप्पा के नाटक ‘आखिरी शमा’ में मिर्जा ग़ालिब का बौद्धिक रूपांतरण ही क्यों न हो। लेकिन, इसका अंदाज़ा कम लोगों को ही होगा कि इन पात्रों को साकार करने के पीछे जन व जीवन का कितना सघन अध्ययन था और वर्षों की तैयारियों, शोध तथा उन परिस्थितियों में वास्तव



में रहकर देखने के बल पर, इन पात्रों को गढ़ा गया था। बलराज साहनी कोई यथार्थ से कटे हुए बुद्धिजीवी तथा कलाकार नहीं थे। आम आदमी से उनका गहरा परिचय (जिसका पता उनके द्वारा अभिनीत पात्रों से चलता है), स्वतंत्रता के लिए तथा सामाजिक न्याय के लिए जनता के संघर्षों में उनकी हिस्सेदारी से निकला था। उन्होंने जुलूसों में, जनसभाओं में तथा ट्रेड यूनियन गतिविधियों में शामिल होकर और पुलिस की नृशंस लाठियों और गोलियां उगलती बंदूकों का सामना करते हुए यह भागीदारी की

थी। गोर्की की तरह अगर ज़िंदगी उनके लिए एक विशाल विश्वविद्यालय थी, तो जेलों ने जीवन व जनता के इस चिरंतन अध्येता, बलराज साहनी के लिए स्नातकोत्तर प्रशिक्षण का काम किया था।

इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन, जिसे इप्पा के नाम से ही ज्यादा जाना जाता है, का जन्म दूसरे विश्व युद्ध तथा बंगाल के भीषण अकाल के बीच हुआ था और बलराज साहनी इसके पहले कार्यकर्ताओं में से थे। एक अभिनेता की हैसियत से भी और एक निदेशक की हैसियत से भी, उनका इप्पा के खजाने में शानदार योगदान रहा था। फिर भी मैं तो अब भी उन्हें इप्पा के एक समर्पित तथा निःस्वार्थ ज़मीनी कार्यकर्ता के रूप में ही याद करता हूं। बाकी सब से बढ़कर वह एक संगठनकर्ता थे। किसी भी मुकाम पर इप्पा अपने नाटकों के जरिये जिस भी लक्ष्य के लिए अपना ज़ोर लगा रहा होता था, चाहे वह फासीविरोधी जनयुद्ध हो या नृशंस दंगों की पृष्ठभूमि में हिंदू-मुस्लिम एकता का सवाल हो, वह चाहे नीग्री व अफ्रीकी जनगण की मुक्ति हो या फिर साम्राज्यवाद के खिलाफ वियतनाम

का युद्ध, बलराज साहनी हमेशा सभी के मन में उस लक्ष्य के प्रति हार्दिकता व गहरी भावना जगाते थे।

दंगों के दौर में तो वह ऐसे काम करते रहे थे जैसे सिर पर कोई भूत सवार हो। नाटक लिखते थे और दूसरों से (जैसे मुझ से) लिखवाते थे, उनका रिहर्सल करते थे और चालों में, बस्तियों में, सड़कों पर, चौपाटी की रेत में और कभी-कभी तो प्रेक्षागृहों में भी यानी जगह-जगह पर और हर जगह, इन नाटकों की प्रस्तुति किया करते थे। (मेरे नाटक जुबैदा के अपने निर्देशन के दौरान तो बलराज ने, विशाल कावासजी जहांगीर हॉल में उपस्थित श्रोताओं के बीच बिजली सी ही दौड़ा दी थी, जब नाटक के दौरान उन्होंने हॉल के बीचों-बीच के रास्ते से होते हुए मंच पर, पूरी की पूरी बारात ही उतार दी थी, जिसमें आगे-आगे बैंड बाजे से लेकर, सफेद घोड़े पर सवार दूल्हा तक, सब कुछ था।)

बहरहाल, उनकी सबसे लोकप्रिय ऐतिहासिक कामयाबियां फिल्मों में उनके काम के दौर में ही आयी थीं। लेकिन, इन भूमिकाओं में भी जनता के जीवन के साथ उनकी तदाकारता मुकम्मल तथा प्रश्नोपरि थी। उन्होंने जो भी भूमिका अदा की, उसे बड़ी उदारता से यथार्थवाद से संपन्न बनाया।

1945 में इप्ता ने जब फिल्म 'धरती के लाल' बनायी, जिसमें सारे के सारे गैर-पेशेवर अभिनेता-अभिनेत्री थे, उसके लिए लंबे-तगड़े तथा नफीस बलराज साहनी ने, जो बीबीसी में दो बरस काम करने के बाद कुछ ही अर्सा हुए लंदन से वापस लौटे थे, खुद को ऐसे आधे-पेट खाकर गुजर करते बंगाली किसान में बदला, जैसे वह अकाल के मारे लाखों किसानों में से ही एक हों।

वह महीनों तक सिर्फ एक वक्त खाकर गुजारा करते रहे थे ताकि कैमरे के सामने उनकी अधनंगी देह, अपने भूख के मारे होने की गवाही दे। और हर रोज़ कैमरे के सामने जाने से पहले वह अपनी धोती, समूचे शरीर और चेहरे पर भी, कीचड़ मिले पानी का छिडकाव कराते थे ताकि हर तरह से अकिंचनता प्रकट हो।

'दो बीघा ज़मीन' बिमल राय की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने वाली गाथा थी। यह गाथा थी एक गरीब किसान के जीवट की, जो कलकत्ता में हाथ-रिक्शा चलाकर इतना पैसा इकट्ठा कर लेना चाहता है, जिससे साहूकार के शिकंजे से अपनी दो बीघा जमीन छुड़ा सके। इस भूमिका को अभिनीत करने के लिए बलराज कई हफ्ते तक कलकत्ता में रिक्शा खींचने वालों

की बस्ती में रहे थे। यहां उन्होंने रिक्शा खींचने के लिए खुद को प्रशिक्षित ही नहीं किया था बल्कि रिक्शा खींचने वालों के तौर-तरीके भी सीखे थे और सबसे बढ़कर उनके जैसा नज़र आना सीखा था।

इस फिल्म के सबसे प्रसिद्ध दृश्य में बेचारा रिक्शावाला दस रुपए के एक नोट की खातिर, एक मोटी सवारी को रिक्शे पर बैठाकर, जिसके हास्यभाव में परपीड़न का तत्व शामिल था, एक बग्घी से होड़ करता है जिसे एक घोड़ा खींच रहा होता है और जीत भी जाता है। बिमल राय ने मुझे बताया था कि वह तो दूरी के शॉटों में बलराज के 'डबल' के तौर पर किसी पेशेवर रिक्शा खींचने वाले को रखना चाहते थे, लेकिन बलराज को यह बात सुनना भी मंजूर नहीं था। उन्होंने बिना 'डबल' का सहारा लिए यथार्थवादी तरीके से इस दृश्य को अभिनीत किया, हालांकि इस दौड़ में करीब-करीब उनके प्राण ही निकल गए होते। इस तरह उन्होंने एक ऐसा शॉट दिया, जिसे यथार्थवादी अभिनय की शानदार विजय के रूप में हमेशा याद किया जाएगा। वास्तव में यह इससे भी बढ़कर था। यह तो शोषितों व वंचितों की ज़िंदगी के सामाजिक यथार्थ का एक मानवीय दस्तावेज़ है।

वास्तव में यही भूमिका थी जिसने एक महान अभिनेता के रूप में उनकी सर्वोच्चता भी स्थापित की और उन्हें इस देश के करोड़ों मेहनतकशों की आंखों का तारा भी बनाया था। उसके बाद से हमेशा ही उन्हें जनता के अपने अभिनेता के रूप में पहचान हासिल रही थी और सम्मान तथा प्यार मिलता आया था।

'काबुलीवाला' में, रवींद्रनाथ टैगोर के रचे बहुत ही भोले पठान के प्यारे से पात्र को साकार करने के लिए, उन्होंने रावलपिंडी में गुजरे अपने बचपन की स्मृतियों को फिर से जगाया था, जहां सीमांत क्षेत्र से आने वाले पठान सहज ही और रोज़मर्रा के जीवन का हिस्सा होते थे। इसके अलावा उन्होंने स्थानीय पठानों से संपर्क कर उनसे उनकी बोल-चाल सीखी थी, उनका प्रिय साज रबाब बजाना सीखा था और पश्तो के गीत गाना सीखा था। उन्होंने पठानों की हिंदुस्तानी की बोल-चाल की ध्वनि और उसके लालित्य को सीखा था। नाटक के मंच और सिनेमा के पर्दे, दोनों पर ही उन्होंने पठान की यह भूमिका अदा की थी और यह कहना मुश्किल है कि दोनों में किस रूप में प्रस्तुति को, चरित्रांकन की दूसरे से बढ़कर विजय माना जाना चाहिए। वर्षों तक वह जहां भी जाते थे, उनके चाहने वाले उनका स्वागत काबुलीवाला के बोलने के तरीके की उनकी

प्रस्तुति की नकल कर के किया करते थे।

उनकी अगली महान कामयाबी थी, इप्ता के नाटक 'आखिरी शमा' में मंच पर मिर्जा गालिब के चरित्र तथा व्यक्तित्व की उनकी पुनर्रचना। यह खेद की बात है कि इस पात्र को सिनेमा के पर्दे पर पेश करने की योजना सिरें नहीं चढ़ सकी और इस देश के करोड़ों लोग उनकी इस प्रस्तुति को देखने से वंचित रह गए। फिर भी हजारों लोगों ने तो नाटक के मंच पर उनकी प्रस्तुति को देखा ही।

इस पात्र की प्रस्तुति को पूर्णतम बनाने में बलराज साहनी को, जो एक पंजाबी थे तथा इस पर गर्व करते थे, एक सहूलियत तो यह हुई कि उनका उच्चारण उर्दू का करीब-करीब बेदाग था और उन्होंने अपने दोस्तों से देहली की उर्दू इस तरह सीखी थी, वह इस जुबान में वैसे ही बोल सकते थे, जैसे गालिब

बोलते रहे होंगे। उन्होंने मुशाइरा शैली में शाइरी पढ़ने की नफीस कला भी घोंटकर पी ली थी। गालिब के पात्र की उनकी प्रस्तुति इतनी विश्वसनीय तथा जीवंत थी कि गालिब के एक महान पारखी तथा गालिब साहित्य के विद्वान ने कहा था : "जाहिर है कि महान शायर को मैंने कभी देखा तो नहीं था, पर मैं इतना ज़रूर जानता हूँ कि गालिब ऐसे ही नज़र आते, ऐसे ही शायरी पढ़ते और नाटक में चित्रित विभिन्न हालात में उनकी ऐसी ही प्रतिक्रिया रही होती।"

लेकिन, एक अभिनेता कोई किसानों, कवियों, पठानों आदि की भूमिकाएं ही नहीं करता है। उसका पेशा उससे कहीं और ज्यादा भांति-भांति के पात्रों को अभिनीत करने की मांग करता है। बलराज द्वारा प्रस्तुत अन्य पात्रों में मुझे उनकी एक अंग्लो-इंडियन डाक्टर (राही), जेलर (हलचल), घूम-घूमकर तमाशा दिखाने वाले (परदेशी), फरार कैदी (पिंजरे के पंछी), एक ईमानदारी आदमी जो नाजायज शराबफरोश बन जाता है (दामन और आग), करोड़पति व्यापारी (प्यार का रिश्ता) और पुलिस इंस्पेक्टर (हंसते जख्म) की प्रस्तुतियां याद हैं। अपनी आखिरी फिल्म में, जो बहुत ही उद्देश्यपूर्ण व राजनीतिक रूप से सार्थक फिल्म, 'गर्म हवा' थी, वह आगरा के एक



जूता व्यापारी की भूमिका अदा करते हैं, जो विभाजन की विभीषिका का शिकार होता है और फिर भी पाकिस्तान जाने के लिए तैयार नहीं होता है।

इन अलग-अलग भूमिकाओं में से हरेक में वह अपने अभिनय कौशल की छाप छोड़ते हैं। उनका यह कौशल मानव व्यवहार के सहानुभूतिपूर्ण प्रेक्षण और यथार्थवाद के लिए गहरे लगाव, व्यौरों के प्रति तथा चरित्र व व्यक्तित्व एक-एक रंग-रेशे के प्रति आश्चर्यजनक ईमानदारी ने गढ़ा था।

बलराज साहनी ने किसी फिल्म संस्थान से प्रशिक्षण नहीं पाया था। वह अंग्रेजी साहित्य के विद्यार्थी थे। फिर उन्होंने अभिनय का असाधारण कौशल पाया कहाँ से? जीवन के विद्यालय से ही उन्होंने इंसानों को, उनकी दुर्बलताओं को व मूर्खताओं को, उनकी कमजोरियों को व उनकी शक्तियों को, उनके

तौर-तरीकों को तथा उनके बनाव-सजाव के तरीकों को दिलचस्पी से देखना सीखा था।

उनकी वामपंथी सहानुभूतियां तथा संबद्धताएं ही उन्हें इप्ता के हम लोगों के पास लायी थीं। इप्ता का तब गठन हुआ ही था और वह पूरे दिलो-जान से उसके काम में कूद पड़े। वह अभिनय करते और नाटकों का निर्देशन करते तथा मंचन करते और वह भी किन्हीं वातानुकूलित प्रेक्षागृहों में नहीं बल्कि घूम-घूमकर अपने गीत सुनाने वाले लोक गायकों की तरह चौपाटी की रेत पर या फिर मुंबई की झोंपड़-पट्टियों में, जहां चार मेजें जोड़कर अस्थायी स्टेज बना लिया जाता था और पीछे से सड़क बंद कर, दर्शक सड़क पर ही बैठ जाते थे।

आखिरकार उन्हें और हमें, अपने समय की ज्वलंत समस्याओं पर केंद्रित अपने नाटकों का प्रेक्षागृहों में मंचन करने का भी मौका मिला, लेकिन हमने कभी अपने शुरू के दौर की सोद्देश्यता की खुशबू को और आम लोगों से अपने मूल संपर्कों को कटने नहीं दिया। जनता के प्रति तथा एक सोद्देश्य जन संस्कृति के प्रति यह प्रतिबद्धता ही, बलराज साहनी के लिए

उनकी प्रेरणा भी थी और हार्दिक भावना भी।

वह एक अभिनेता थे, लेकिन सिर्फ अभिनेता ही नहीं थे। उनकी असाधारण प्रतिभा की अभिव्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों में हुई थी। वह एक वामपंथी रुझान के तथा प्रगतिशील वचनबद्धताओं के राजनीतिक व सामाजिक कार्यकर्ता थे और जब वह कम्युनिस्ट पार्टी के कार्डधारी सदस्य नहीं रहे थे, तब भी यह स्थिति बदली नहीं। वह एक विवेकवादी तथा अज्ञेयतावादी थे और उनमें विश्वास की इतनी दृढ़ता थी कि आखिरी समय तक अपने विश्वास पर अडिग रहे थे।

जब उनकी बेटी की मौत हुई वह चुनाव में इंदिरा कांग्रेस के प्रचार के लिए मध्य प्रदेश में थे। इसी तरह जब भिवंडी में दंगे हुए, वह भिवंडी गए थे और एक मुस्लिम मोहल्ले में, मुसलमानों के साथ दो हफ्ते रहे थे ताकि धर्मनिरपेक्ष भारत में उनका भरोसा बहाल कर सकें। अच्छे कामों के लिए प्रचार करने के लिए वह लगातार देश भर में दौरे करते रहते थे। इष्टा के लिए तथा जुहू आर्ट थिएटर के लिए वह नाटक लिखते थे, उनमें अभिनय करते थे, उनका निर्देशन करते थे और यहां तक कि इन नाटकों में पैसा खर्च भी करते थे। वह फिल्मों से पैसा कमाते थे लेकिन, इस पैसे को अपने लिए ऐशो-आराम पर खर्च करने की जगह, वह इसमें से ज्यादातर पैसा उन अनेक अच्छे कामों के लिए दे देते थे जिनमें वह यकीन करते थे और जिनके प्रति उनकी प्रतिबद्धता थी। उनसे मेरी आखिरी मुलाकात, एक ऐसे होस्टल की स्थापना की योजना के सिलसिले में हुई थी, जिसमें अरब और भारतीय छात्र साथ-साथ रह सकते हों। जिस रोज उनका इंतकाल हुआ, उस रोज भी, उन्हें दिल का जानलेवा दौरा पड़ने से घंटे भर पहले ही मेरी टेलीफोन पर उनसे बात हुई थी और वह बड़े जोश के साथ हैदराबाद में बालिगा मैमोरियल अस्पताल के निर्माण के बारे में चर्चा कर रहे थे।

एक बेहतर ज़िंदगी के लिए जनता के संघर्षों में सक्रिय हिस्सेदारी के अनुभव से ही उनका तेजस्वी व्यक्तित्व भरा हुआ था और उसी से उन्होंने उन विविध पात्रों पर एक गहरी व सहानुभूतिपूर्ण पकड़ हासिल की थी, जिन्हें उन्होंने इतने कौशल से तथा हार्दिक मानवीय भावना के साथ सजीव किया था।

उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का प्रस्फुटन सिर्फ अभिनय तक ही सीमित नहीं था। वह एक कहानी लेखक थे। पहले उन्होंने हिंदी में कहानियां लिखीं तथा आगे चलकर अपनी प्यारी पंजाबी जुबान में, जिसके विकास के लिए उन्होंने भावपूर्ण समर्पण से काम किया था। पाकिस्तान के दो हफ्ते के सफर की

उनकी यात्रा डायरी, गुजरे जमाने के लिए लगाव की कशिश से भरा एक दस्तावेज है, जिसका रेडक्लिफ की खींची रेखा के दोनों तरफ गर्मजोशी भरा स्वागत हुआ था, जोकि एक भारतीय लेखक के लिए दुर्लभ उपलब्धि है। पंजाबी भाषा, पंजाबी साहित्य तथा पंजाबी संस्कृति पर उनका बड़ा भरोसा था और यह उन्हें पाकिस्तान के किसी भी पंजाबी के साथ तार जोड़ने में समर्थ बनाता था। उनके निधन से कुछ हफ्ते पहले की ही बात है, लाहौर से एक युवा संपादक दोनों देशों के बीच आदान-प्रदान के हिस्से के तौर पर आया था और बलराज ने उसे खाने पर बुलाया था। इस भोज में उन्होंने एक नारा दिया था - “दुनियाभर के पंजाबियों एक हो।” हालांकि वह पंजाबी भाषा के हिमायती थे, फिर भी (जवाहरलाल नेहरू की तरह) वह इसकी वकालत करते थे कि सभी भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनायी जाए, ताकि उनमें एकता तथा एकमेकता लायी जा सके। कभी-कभी वह रोमन लिपि में हिंदुस्तानी जुबान में अपने दोस्तों को लंबे-लंबे पत्र भी लिखा करते थे।

जब वह शूटिंग के लिए जाते थे, तब भी बराबर गुरुमुखी का टाइपराइटर उनके साथ रहता था। इसी पर वह दोपहर के ब्रेक के दौरान अपने लेख, कहानियां, निबंध, नाटक और यहां तक कि उपन्यास के अंश भी लिखते थे, सभी कुछ पंजाबी में। मिसाल के तौर पर जब वह आगरा में शूटिंग कर रहे थे, वह अपना खाली वक्त मुस्लिम जूता बनाने वालों की ज़िंदगी के बारे में जानने में लगाते थे क्योंकि वह जिस पात्र का अभिनय कर रहे थे, इसी समाज से आता था। अगर वह पंजाब के किसी गांव में होते थे, वह अपनी शामें गांव वालों के बीच, उनकी बोल-ठोली तथा गीतों की टेप पर रिकार्ड करते हुए गुजारते थे, ताकि जनता की भाषा की अपनी शब्दावली को और विस्तृत व समृद्ध बना सकें।

उन्हें साहित्य से प्यार था। उन्हें रंगमंच से प्यार था। उन्हें सिनेमा से प्यार था। उन्हें राजनीति में सभी प्रगतिशील रुझानों से प्यार था। वह सोवियत संघ से प्यार करते थे और वह चीन, वियतनाम, क्यूबा और अरब देशों व उनके जनगण से भी प्यार करते थे। लेकिन, सबसे बढ़कर वह भारतीय जनता से प्यार करते थे और उसके जीवन, उसके संघर्षों, उसकी समस्याओं, उसकी कमजोरियों तथा शक्ति के साथ, खुद को जोड़कर देखते थे। अचरज की बात नहीं है कि उनके आखिरी शब्द थे “मेरे लोगों को मेरा प्यार देना।”

साभार : [iptanama.blogspot.in](http://iptanama.blogspot.in)

## साड़ी विरासत

■ जां निसार अख्तर

उर्दू शाइरी शुरू ही से मिली-जुली सभ्यता की अमानतदार रही है। यों तो हिंदू और मुस्लिम सभ्यताएं उस समय से एक-दूसरे को प्रभावित करने लगी थीं जब मुसलमानों ने सिंध में अपने कदम जमाए। लेकिन वह प्रारंभिक दौर कहा जा सकता है। शुरू में इस आपसी मेलजोल का खास पहलू मुसलमान सूफियों के आंदोलन हैं। हिंदुस्तान का वातावरण पहले से इन सूफियों के ईरानी तसव्वुफ को स्वीकार करने के लिए तैयार था। हिंदुस्तान ने प्राचीन काल में उपनिषदों का जो फलसफा पैदा किया था और जिसे नवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने पुनर्जीवित किया, उसमें अद्वैत की कल्पना मौजूद थी। बाद में विष्णु-भक्ति आंदोलन ने भी अद्वितीय अस्तित्व की प्राप्ति के लिए सूफियों के मार्ग को ही अपनाया था। अतएव एक तरफ तसव्वुफ का असर भक्ति आंदोलन पर पड़ा तो दूसरी तरफ तसव्वुफ भी हिंदू दर्शन से प्रभावित हुआ। तसव्वुफ और भक्ति के इन आंदोलनों के फलस्वरूप सभ्यता और धर्म के वैमनस्य निरर्थक समझे जाने लगे थे। राम और रहीम एक ही कल्पना के द्योतक नज़र आने लगे थे। यही वह रहस्य था जो दोनों मज़हबों की रूह के लिए एक संगम का काम दे सका। मुसलमान सूफियों में ख़ाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (मृत्यु 1226), ख़ाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी, ख़ाजा फ़रीदुद्दीन गंजशकर और निज़ामुद्दीन औलिया वगैरा का खास तौर पर नाम लिया जा सकता है। बारहवीं सदी में दक्षिण में भक्ति आंदोलन का बड़ा ज़ोर था। रामानुज के प्रभाव से यह तहरीक दक्षिण में बहुत लोकप्रिय हुई। तेरहवीं सदी में जब दिल्ली को एक केंद्रीय हुकूमत की हैसियत प्राप्त होने लगी थी तो जहां तसव्वुफ को फलने-फूलने का मौका मिला, वहां भक्ति तहरीक भी परवान चढ़ती गयी। उत्तर भारत में इस आंदोलन को लोकप्रिय बनाने में रामानन्द और उनके अनुयायी भक्ति कबीर, तुलसीदास और मीराबाई का बड़ा हिस्सा है। सम्राट अकबर का दौर सही मानों में हिंदू-मुस्लिम तहज़ीबों के मिलाप का ज़माना था। उसकी कोशिशों ने मिली-जुली राष्ट्रियता और मिली-जुली सभ्यता की रफ़्तार को तेज़ कर दिया। यह प्रभाव हर जगह दिखाई देने लगा। चित्रकला, संगीत, वास्तुकला आदि पर भी इस मेलजोल का असर पड़ा। तसव्वुफ और भक्ति आंदोलन के काल में एक और अहम चीज़ जो उभरी थी वह विभिन्न बोलियों की उन्नति थी जिनके द्वारा सूफ़ी और

भक्त अपने विचार जन-साधारण तक पहुंचा रहे थे। मुसलमान सूफ़ियों ने अपने विचारों के प्रचार के लिए जो रास्ता निकाला वह स्थानीय बोलियों में तुर्की, अरबी और फ़ारसी के शब्दों की मिलावट का था। वैसे तो यह मिलावट सिंध के ज़माने ही से शुरू हो चुकी थी, सूफ़ियों की कोशिशों से इसे और बढ़ावा मिला। उस वक़्त यह मिली-जुली ज़बान 'रेख़्ता' कहलाई। अमीर खुसरो (1253 से 1325) के कलाम में इस रेख़्ते का स्पष्ट रूप हमारे सामने आता है। यह रेख़्ता खड़ी बोली में फ़ारसी के शब्दों की मिलावट है जिसमें उन्होंने गीत, पहेलियां और मुकरनियां लिखीं। स्थानीय बोलियों पर ज़ोर देने की यही वह प्रवृत्ति थी जिसने तुलसीदास से अवधी में 'रामचरित मानस' और सूरदास से ब्रजभाषा में 'सूर सागर' लिखवाया। मुसलमानों ने भी स्थानीय बोलियों में बहुत से अदबी कारनामे पेश किये, खासतौर पर मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' जो अवधी भाषा की एक अमर कृति है।

खड़ी बोली में अरबी, तुर्की और फ़ारसी के शब्दों की मिलावट का जो सिलसिला शुरू हुआ था और जो खुसरो के ज़माने में रेख़्ता कहलाया, एक नई हिंदुस्तानी ज़बान को जन्म देने में कामयाब हुआ जिसे शुरू में हिंदी या हिंदवी कहा गया और बाद में जो उर्दू कहलाई।

अकबर के ज़माने में यद्यपि हिंदुओं और मुसलमानों की मिली-जुली सभ्यता ने, जिसे हिंदुस्तानी सभ्यता कहना चाहिए, बड़ी तेज़ी के साथ तरक्की करना शुरू कर दिया था, लेकिन इस नयी हिंदुस्तानी ज़बान की तरक्की की रफ़्तार बहुत सुस्त थी। अलबत्ता दक्षिण में दकनी उर्दू ने बहुत उन्नति कर ली थी और सुल्तान कुली कुतबशाह के शासन काल में, जो अकबर का समकालीन था, उसे अदबी दर्जा प्राप्त हो गया था। यों तो दक्षिण में बहमनी सल्तनत ही के ज़माने से दकनी उर्दू की बुनियाद पड़ने लगी थी और सैयद मुहम्मद हुसैन गेसूदराज़ ने अनेक लेख और शेर दकनी उर्दू में कहे थे। लेकिन इस सल्तनत की समाप्ति पर जब बिदर, बरार, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा के स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आये तो भाषा और साहित्य की बड़ी सेवा हुई। खास तौर पर आदिलशाही और कुतुबशाही दौर में अगर एक तरफ़ दक्षिण भाषा और साहित्य की उन्नति हुई तो दूसरी तरफ़ हिंदू और मुसलमानों के सांस्कृतिक

मेलजोल से नया समाज दिन-प्रतिदिन उन्नति करता गया। यह मिली-जुली संस्कृति जो एक ओर उत्तर भारत में और दूसरी ओर दक्षिण में उन्नति कर रही थी, दकनी उर्दू और उत्तर भारत की उर्दू में रचती चली गयी। अगर कुली कुतबशाह के दीवान में हिंदुस्तानी मौसमों, त्यौहारों, रीति-रिवाजों और हिंदू पौराणिक कथाओं के हवाले हैं तो उत्तर भारत के प्रारंभिक शाइरों में 'फाइज़' देहलवी की 'पनघट' हिंदुस्तान के असली दृश्य पेश करती है। शाह आयतुल्लाह 'जौहरी' की मस्नवी 'गौहरे-जौहरी' में कंवलदयी की ज़बानी जो बारहमासा लिखा गया है उसमें 'भाषा' की शाइरी का पूरा अक्स है। इतना ज़रूर है कि जो हिंदुस्तानियत कुली कुतबशाह की गज़लों में मिलती है या 'वली' दकनी के कलाम में जिस तरह प्रेमिका से संबोधन सजन और मोहन शब्दों में नज़र आता है और जिस प्रकार टीके और भभूत का जिक्र मिलता है वह उत्तर भारत के उस दौर के शाइरों में कहीं-कहीं देखने को मिलता है। उत्तर भारत की गज़ल पर फ़ारसी का प्रभाव था। उसे उन मुगल शासकों का संरक्षण भी प्राप्त नहीं हुआ जो मिली-जुली संस्कृति के समर्थक थे।

औरंगज़ेब के दक्षिण प्रवास से उत्तर और दक्षिण का संबंध बढ़ा और 'वली' दकनी सन् 1700 ई. में देहली आये। 'वली' के इस सफ़र के बाद से उत्तर भारत में उर्दू शाइरी तेज़ी से क़दम बढ़ाने लगी। अगर हम उस दौर से लेकर आज तक उर्दू के काव्य-रूपों पर गहरी नज़र डालें तो हम इस नतीजे पर आसानी से पहुंचेंगे कि वह गज़ल हो या नज़्म, मस्नवी हो या क़सीदा, यहां तक कि मर्सियों तक में मिली-जुली हिंदुस्तानी सभ्यता और संस्कृति समाई हुई है। गज़ल में यह ज़रूर है कि जो उपमायें, रूपक या प्रतीक आमतौर पर इस्तेमाल हुए हैं वे फ़ारसी अदब से आये हैं, लेकिन इससे इनकार कैसे किया जा सकता है कि इन पदों के पीछे हर युग के हिंदुस्तानी जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चित्र उजागर हैं। अगर मीर तकी 'मीर' कहता है-

दिल की बरबादी का क्या मज़कूर है

यह नगर सौ मर्तबा लूटा गया

तो यहां दिल का लफ़ज़ दिल्ली का पर्यायवाची बन जाता है जो भीतरी और बाहरी हमलों से तहस-नहस होती रहती थी। या 'रिन्द' लखनवी का यह शेर-

खुली है कुंजे-क़फ़स में मिरी ज़बां सैयाद

में माजरा-ए-चमन क्या करूं बयां सैयाद

तो दरअसल यह रूपक हिंदुस्तान की उस हालत की तरफ़ इशारा करता है जब दिल्ली और लखनऊ की सल्तनतें ख़ाबो-ख़याल हो चुकी थीं और हमारा देश ब्रिटिश सत्ता के शिकंजे में जकड़ गया था। आखिर में आने वालों में 'हाली' का यह शेर लीजिये-

'हाली' नशाते-नग्मा-ओ-मै दूंडते हो अब

आये हो वक़्ते-सुब्ह, रहे रात भर कहां

तो इस शेर के पीछे मुगल साम्राज्य की तबाही और बरबादी की पूरी दास्तान छिपी हुई मिलेगी। हमें यह न भूलना चाहिए कि गज़ल में इशारों की ज़बान इस्तेमाल होती रही है। सरसरी तौर पर देखने वालों को ऐसा लगता है कि गज़ल में रस्मी विषय हैं और उसे हिंदुस्तान या हिंदुस्तानियत से कोई वास्ता नहीं है। मगर गज़ल वास्तव में अपने देश की हर युग की कहानी कहती आई है। सूफ़ियों की तहरीकें हों या मुल्की और सियासी हालात और घटनाओं का बयान हो, गज़ल ने अपने ढंग से सबकुछ कहा है।

उर्दू शायरी का दूसरा रूप मस्नवी लीजिए। मस्नवी का अंदाज़ वर्णनात्मक है, इसलिए बात खुलकर सामने आती है। कितनी मस्नवियां हैं जिनके विभिन्न भागों में हिंदुस्तान की मिली-जुली सभ्यता रची-बसी है। 'फाइज़' की मस्नवियां 'निहां' और 'जोगन'; शाह 'हातिम' की मस्नवी 'बज़्मे-इश्रत'; 'मीर' की मस्नवी 'जश्ने-होली' और 'क़दखुदाई' और 'सौदा' की मस्नवी 'मौसमे-गरमा' ही पर निर्भर नहीं, मीर हसन की 'सहरूलबयान' हिंदुस्तान की सामाजिक और सांस्कृतिक रस्मों और परंपराओं से भरी पड़ी हैं। 'मुस्हफ़ी' ने गर्मी और जाड़े की कैफ़ियत बयान की है तो 'रंगीन' की 'दिल-पज़ीर' में जो 'क़िस्स-ए-जबीनो-नाज़नीन: रानी श्रीनगर' के नाम से मशहूर है और दयाशंकर 'नसीम' के 'क़िस्स-ए-गुल बकावली' में हिंदुस्तानी तत्वों की कितनी झलकियां मौजूद हैं। बाद के शाइरों की मस्नवियां जिनमें हिंदुस्तानियत का तत्व है, उनमें 'इब्रत' की पद्मावत, मूलचंद मुंशी की 'हीर-रांझा', नवाब मुहब्बत खां 'मुहब्बत' की 'ससी-पुन्नू' और 'राहत' काकोरवी की 'नल-दमन' विशेषतः उल्लेखनीय हैं। वाजिदअली शाह के युग में 'अमानत' के छंदोबद्ध ड्रामे 'इंद्र सभा' में भी हिंदुस्तानी झलक नज़र आती है।

मस्नवियों की तरह क़सीदों में भी हिंदुस्तानियत के तत्व बिखरे हुए मिलते हैं। दकनी उर्दू में तो ईद, बक़रीद और वसंत या मौसमों पर क़सीदे लिखे ही गये थे। 'वली' दकनी ने जो क़सीदों की तशबीब (प्रारंभिक भाग) लिखी है उसमें हिंदुस्तानी ज्योतिष विद्या और संगीत का बयान भी लिखा है। 'सौदा' के क़सीदे यद्यपि काल्पनिक उड़ाण पर आधारित हैं लेकिन उनके अधिकांश क़सीदों में वसंत ऋतु का जिक्र है। उनका मशहूर क़सीदा 'शहर आशोब' उस ज़माने के राजनीतिक पतन और सामाजिक दरिद्रता पर व्यंग्य की हैसियत रखता है। 'मीर' के यहां भी एक क़सीदे में ज़माने की गर्दिश का जिक्र यथार्थ के रूप में किया गया है। हम सिर्फ़ उन्हीं क़सीदों की तरफ़ इशारा करना चाहते हैं जिनका विषय या जिनका प्रारंभिक भाग हिंदुस्तानी सभ्यता का आईनादार है। 'इंशा' के अधार्मिक क़सीदों

में हिंदी के शब्द बहुतायत से प्रयुक्त हुए हैं। और हिंदुस्तानी इशारों और परंपराओं का भी नियमित रूप से उपयोग किया गया है। उनके क़सीदों के किसी-किसी टुकड़े में हिंदुस्तानी वातावरण पूर्ण रूप से सांस लेता है। 'दुल्हन जान' की प्रशंसा में जो क़सीदा 'इंशा' ने कहा है उसमें हिंदुस्तानी संगीत की शब्दावली और हिंदुस्तान के उस युग की दरिद्रता और अशांति का नक़शा खींचा गया है। 'ज़ौक' के एक क़सीदे के प्रारंभिक भाग में हमको ज्योतिष, खगोल विद्या, आयुर्वेद, इतिहास, मतलब यह कि पूर्वी विद्याओं और कलाओं का हवाला मिलता है, जिसकी वजह से एक ज्ञान का वातावरण पैदा हो गया है। हिंदुस्तानी संगीत के बारे में सुनिये-

इस क़दर साज़े-तरबसाज़ की आवाज़ बुलंद  
छेड़ें गर तार खरज का तो हो पैदा धैवत  
लेके अंगड़ाई कहीं हंसने लगी राम कली  
उट्टी मलती हुई आंखों को कहीं अपनी ललत

गालिब ने उस क़सीदे की तशबीब में जो हज़रत अली की स्तुति में है, तसव्वुफ़ और वेदान्त के उस दृष्टिकोण को पेश किया है जो विश्व के प्रारंभ के बारे में है। एक क़सीदे में प्रातःकाल का दृश्य बहुत जानदार है। यों तो सैंकड़ों क़सीदे हैं लेकिन अरमान अली 'सहर' लखनवी के 'क़सीदा-ए-बहारिया' पर हमारी नज़र ठहरती है जिसका शेर है-

अय हवा जाके बनारस से उड़ा ला बादल  
चाहिए हिंदवी सौसन के लिए गंगाजल

'मुनीर' शिकोहाबादी के चन्द क़सीदों में 1857 की क्रांति की घटनायें दर्ज हैं। 'तस्लीम' के क़सीदों के प्रारंभ में आमतौर पर निजी गुम मिलता है, लेकिन एक क़सीदे में 'दिले-बरबाद' की खानाख़राबी की आड़ में आम सामाजिक दशा की तरफ़ इशारा कर गये हैं-

घर किया खानाख़राबी ने दिले-बरबाद में  
आजकल है अपना सीना ग़ैरते-हिन्दोस्तां

उर्दू के शाइर मिली-जुली हिंदुस्तानी सभ्यता और संस्कृति से कितने प्रभावित थे, इसका अंदाज़ा मर्सियों के अध्ययन से भी आसानी से हो सकता है। कर्बला की घटनाओं की पृष्ठभूमि यद्यपि अरब देश है लेकिन मर्सिए हिंदुस्तानी समाज का चित्र पेश करते हैं। हम अगर सिर्फ़ 'अनीस' के मर्सियों को उठाकर देखें तो काफ़ी है। हद यह है कि 'अनीस' ने इमाम हुसैन की लड़की और भतीजे की शादी के मौके पर हिंदुओं के संस्कार बयान किये हैं। संदल, मेंहदी, नथ, कंगना, सेहरा ख़ालिस हिंदुस्तानी चीज़ें हैं। दूल्हा के सिर पर बहनों का आंचल डालना ख़ालिस हिंदुस्तानी रस्म है-

बहनें किधर हैं डालने आंचल बने पे आयें  
अब देर क्या है हुजरे से बाहर दुल्हन को लायें

यहां तक तो हमने प्राचीन उर्दू शाइरी में मिली-जुली हिंदुस्तानी सभ्यता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। अब एक उचटती-सी नज़र आधुनिक शाइरी पर भी डाली जाए जो 'आज़ाद' और 'हाली' के दौर से शुरू होती है।

'आज़ाद' और 'हाली' के दौर से आधुनिक नज़्म-निगारी शुरू होती है। यह बदलते हुए हालात का तकाज़ा था। अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव भी उर्दू साहित्य पर पड़ने लगा था। 'आज़ाद' की 'अब्रे-करम' और 'ज़मिस्तां' में और 'हाली' की 'बरखा रुत' में हिंदुस्तानी मौसमों का चित्रण है। नेचुरल शाइरी के इस दौर में हिंदुस्तान के दृश्यों और यहां के मौसमों पर इतना मसाला मिलता है जो अपने संपादन के लिए कई ग्रंथों की अपेक्षा करता है। इसका विस्तृत वर्णन हम उन अध्यायों के अंतर्गत करेंगे जिनमें प्राकृतिक दृश्यों और मौसमों पर नज़्मों दी गयी हैं। अलबत्ता यह जान लेना ज़रूरी है कि यह युग केवल मंज़र-निगारी तक ही सीमित न रहा था बल्कि इस दौर से ही उर्दू शाइरी सीधे-सीधे देशप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण होने लगी थी। देशभक्ति की जो लहर 'हाली', 'आज़ाद', और इस्माईल, 'सुरूर' जहानाबादी और 'चकबस्त' से चली उसके पीछे देश के सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव काम कर रहे थे। यह लहर ज़माने के साथ-साथ बढ़ती चली गयी और हिंदुस्तान के सारे राजनीतिक आंदोलनों को अपने में समोती गयी। हर सामाजिक और राजनीतिक घटना जैसे उर्दू शाइरी का अभिन्न अंग हो। कोई मंज़िल और कोई मोड़ ऐसा नहीं है जहां उसने साथ न दिया हो या उसे अपने दिल की आवाज़ में न ढाला हो। इंक़िलाब जिंदाबाद तक का नारा उर्दू ज़बान ही ने हमारी जंगे-आज़ादी को दिया। यह सच है कि जंगे-आज़ादी के इतिहास को उर्दू नज़्मों ने अपने दिल के खून से लिखा है और इसे दोस्त-दुश्मन सभी मानते हैं। 'इक़बाल', 'जोश' और 'फ़िराक' और उनके समकालीन सभी शाइर और उनके बाद आने वाली प्रगतिशील शाइरों की नस्ल ने यह जंग अपने क़लम से लड़ी है। उर्दू शाइरी ने मुल्की सियासत को किस तरह अपनाया और क्या सेवा की इसकी व्याख्या हम इस संकलन के दूसरे भाग में करेंगे जिसमें हिंदुस्तान के राजनीतिक आंदोलनों को सम्मिलित किया जाएगा। इस जगह हम उर्दू के मशहूर लेखक कैयूम 'ख़िज़्र' का एक उद्धरण देना काफ़ी समझते हैं: "अगर हिंदुस्तान की तमाम तारीखी किताबें (इतिहास) खत्म कर दी जायें, तमाम आंदोलनों के वृत्तान्त गुम कर दिये जाएं और सिर्फ़ उर्दू साहित्य बाकी रह जाए तो आप हिंदुस्तान की हर युग की लगातार ऐतिहासिक कड़ियों को जोड़ सकते हैं और आपकी केवल उर्दू के द्वारा हिंदुस्तान के संपूर्ण इतिहास का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।"

साभार : हिन्दोस्तां हमारा-1

...क्रमश जारी

## वह चंद्रगुप्त का पीछा करती थी

■ कुमार नरेन्द्र सिंह

ट्रॉय के हेलेन को तो सभी जानते हैं, लेकिन इतिहास में एक और भी हेलेन हो चुकी है, जो सिकंदर महान के सेनापति सेल्यूकस निकेटर की प्यारी बेटी थी। चूंकि सिकंदर का कोई वारिस नहीं था, इसलिए उसकी मौत के बाद उसके साम्राज्य को उसके सेनापतियों ने आपस में बांट लिया। सेल्यूकस को साम्राज्य का पूर्वी हिस्सा प्राप्त हुआ, जिसमें भारत का उत्तरी-पश्चिमी हिस्सा भी शामिल था। सेल्यूकस के नेतृत्व में ही सिकंदर की यूनानी सेना ने ईसा पूर्व 326 में हाइडेस्पस की लड़ाई में राजा पोरस को पराजित किया था। ट्रॉय के हेलेन की तरह यह हेलेन भी एक अपूर्व सुंदरी थी, बल्कि यूं कहें कि सौंदर्य की मलिका थी। न जाने कितने यूनानी नौजवान एवं सेनापति उसे अपना बनाने की चाहत रखते थे। उसकी एक नज़र पाने के लिए वे उसके महल और खेमे के आस-पास मंडराते रहते थे। ऐसा नहीं था कि हेलेन को इसका भान नहीं था, लेकिन उसकी आंखों को कोई जंचता ही नहीं था। उसकी आंखें तो किसी और को ढूँढ रही थीं और यह कोई और था पाटलीपुत्र का राजा चंद्रगुप्त मौर्य।

बात उन दिनों की है, जब चंद्रगुप्त मौर्य अभी भारत का सम्राट नहीं बना था और अपने गुरु चाणक्य की देख-रेख में वाहीक प्रदेश में युद्ध विद्या का अभ्यास कर रहा था। एक दिन हेलेन ने देखा कि एक अत्यंत रोबीला और सुगठित शरीर वाला नौजवान एक साथ सात-सात सैनिकों से हाथ आजमा रहा है। एक साथ सातों उसके ऊपर वार करते और वह हंसते-हंसते उनके वारों को काट डालता। अपने वार को बार-बार खाली जाते देख वे सातों खीझ उठे और अब वे अभ्यास के लिए नहीं, बल्कि वास्तव में घातक वार करने लगे, लेकिन वह नौजवान तो अब भी हंसे जा रहा था और आसानी से उनके वारों को विफल कर रहा था। थोड़ी देर तो वह युवक उनके वारों से अपने को बचाता रहा लेकिन उसके जैसा योद्धा के लिए यह समझना मुश्किल नहीं था कि वे सातों उसे मारने पर आमादा थे। बस, क्या था... उस युवक ने देखते ही देखते तलवार के ऐसे करतब दिखाए कि सातों के हाथों से उनकी तलवारें छूट गईं और वे निहत्थे खड़े हो गए। उन्हें लगने लगा कि अब उनके प्राण बचने वाले नहीं। लेकिन उस युवक ने उन्हें मारा नहीं, बल्कि हंसते हुए कहा, 'हमारी तलवार का आब इतना मगरूर नहीं कि

वह निहत्थों पर वार करे। अगर तुम लोग मुझसे सचमुच युद्ध करना चाहते हो, तो मुझे कोई ऐतराज नहीं, लेकिन अभ्यास के बहाने युद्ध तो ना करो, कम से कम तलवार को इज्जत तो बख़्शो। मेरी तलवार सिर्फ कमजोरों की रक्षा में उठती है। अगर मुझे पराजित करना चाहते हो तो अपनी तलवार के लिए भी यही जिम्मेदारी मुकर्रर करो।' वे सातों चुपचाप खड़े रहे। उसके बाद वह युवक अखाड़े से बाहर आया और अपने घोड़े पर सवार होकर अपने खेमे की ओर निकल गया। यह युवक कोई और नहीं, बल्कि पाटलीपुत्र का भावी सम्राट स्वयं चंद्रगुप्त मौर्य था।

जिस समय चंद्रगुप्त सात-सात सैनिकों से अकेले हाथ आजमा रहा था, उस वक्त अनेक लोग उसकी तलवारबाजी का जौहर देख रहे थे। जब चंद्रगुप्त ने सातों को पराजित कर दिया तो चारों तरफ से वाह-वाह की ध्वनि उठने लगी। सभी उसकी तलवारबाजी की कला की सराहना कर रहे थे। लेकिन इस कोलाहल से अलग चंद्रगुप्त को तलवारबाजी करते एक युवती भी देख रही थी और यह युवती कोई और नहीं, बल्कि यूनानी सम्राट सेल्यूकस निकेटर की बेटी हेलेन थी। वह चंद्रगुप्त के सुंदर रूप, शालीन व्यवहार और तलवारबाजी के दांव-पेंच मंत्र-मुग्ध होकर देख रही थी। इतना सुंदर मर्दाना रूप उसने आज तक नहीं देखा था। जब चंद्रगुप्त अपने घोड़े पर सवार होकर अपने खेमे की तरफ चला तो हेलेन उसे जाते अपलक देखती रही। जब चंद्रगुप्त का घोड़ा आंखों से ओझल हो गया तो वह अन्यमनस्क भाव से अपने महल में लौट चली। वह महल में लौट तो आई लेकिन अपना दिल चंद्रगुप्त को दे आई। वह दिल ही दिल में चंद्रगुप्त से प्यार करने लगी। अब उसका मन उसके हाथ में नहीं रह गया था, वह हमेशा चंद्रगुप्त को एक नज़र देखने का बहाना ढूँढने में लगी रहती। उसने अपने विश्वस्त सैनिकों और दासियों को चंद्रगुप्त की दिनचर्या पर नज़र रखने के लिए लगा दिया, ताकि उसे पता चल सके कि वह अकेले कहीं आता-जाता है या नहीं। चंद्रगुप्त के दीदार के लिए उसका मन मचलने लगा, दिल में मिलन की प्यास बढ़ती जा रही थी। लेकिन मिलना क्या इतना आसान था। आखिर हेलेन एक बादशाह की बेटी थी। वह जहां भी जाती, उसके सैनिक और नौकर-चाकर भी साथ रहते। इसके बावजूद वह चंद्रगुप्त को एक नज़र देखने के लिए उसका पीछा



करती रहती थी और कभी-कभी तो काफी दूर तक और देर तक पीछा करती थी। मिलने का मौका तो नहीं मिलता था, लेकिन दूर से देख कर ही वह अपने दिल को दिलासा दिलाया करती थी।

इस बीच चंद्रगुप्त चाणक्य की मदद से चंद्रवंश का नाश करने में सफल हो गया और उत्तर भारत में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। चंद्रगुप्त को इस बात की कोई भनक नहीं थी कि हेलेन उससे प्यार करती है। वह तो यह भी नहीं जानता था कि हेलेन नाम की कोई लड़की भी है। एक बार पाटलीपुत्र का काम-काज निपटा कर वाही प्रदेश पहुंचा। वहां वह अपनी शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप देने के लिए पहुंचा था। एक दिन अपने चंद्र सैनिकों के साथ झेलम नदी के किनारे टहल रहा था। अचानक उसने अपने घोड़े को लेकर अकेले ही झेलम नदी के कगार की तरफ फेर दिया। जब बिलकुल किनारे पहुंचा तो देखा कि कई सुंदर युवतियों के बीच एक युवती आराम फरमा रही है। चंद्रगुप्त के मन में कौतुहल जगा कि इतनी सुंदर युवतियों के बीच बैठी वह युवती कौन हो सकती है। चंद्रगुप्त अपने घोड़े से उतर गया और उसे देखने के लिए दबे पांव आगे बढ़ा। अब युवती का मुखड़ा उसके सामने था। चंद्रगुप्त को ऐसा लगा जैसे आकाश में अचानक चांदनी छिटक आई हो। चंद्रगुप्त अपनी सुध-बुध खोकर उसका रूप पान करने लगा। यूं तो चंद्रगुप्त ने अनेक सुंदर युवतियों को देखा था लेकिन स्तब्ध करने वाली ऐसी सुंदरता की तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। उसका दिल हेलेन के गेसुओं में गिरफ्तार हो गया। अब चंद्रगुप्त की दशा भी वैसी ही हो गई, जैसी कल तक हेलेन की थी। अब चंद्रगुप्त भी उसे देखने की जुगत में रहने लगा। दोनों के दिल में प्रेम के अंकुर फूट चुके थे, लेकिन दोनों ही अपने-अपने प्यार के संसार में तनहा थे। यह तनहाई तो तभी दूर हो सकती थी, जब उनकी मुलाकात होती, लेकिन मिलना तो दूर, अभी तो दोनों को यह भी पता नहीं था कि कौन क्या है, न तो चंद्रगुप्त जानता था कि हेलेन कौन है और न हेलेन जानती थी कि चंद्रगुप्त कौन है... दोनों एक-दूसरे के नाम से भी अनजान थे। यह दो अजनबियों का अनोखा प्यार था। वे मिलना तो चाहते थे, लेकिन समस्या यही थी कि मिलें भी तो कैसे मिलें। दोनों ने ही अपने प्यार का राज दुनिया से अभी तक छुपा रखा था। अपने-अपने दिल की हालत सिर्फ वही जानते थे और यह समझ नहीं पा रहे थे कि अपना हाल-ए-दिल एक-दूसरे से बताएं भी तो कैसे। अंत में चंद्रगुप्त ने अपने एक विश्वसनीय दोस्त से अपने दिल की बात बता दी। दोस्त ने बताया कि उस युवती तक उसके प्यार का पैगाम पहुंचाना कोई इतना मुश्किल काम भी नहीं है। यह सुनकर चंद्रगुप्त को तसल्ली तो मिली, लेकिन वह समझ नहीं

पा रहा था कि उसका दोस्त उसके प्यार का पैगाम उस तक पहुंचाएगा भी तो किस तरह, क्योंकि न तो वह उस युवती का नाम जानता है और न उसका पता। चंद्रगुप्त की उलझन ताड़ कर उसके दोस्त ने कहा, 'यह सब मेरे ऊपर छोड़ दीजिए, आप सिर्फ उस युवती का रंग-रूप बताइए।' चंद्रगुप्त ने जब उस युवती के रूप का वर्णन किया तो दोस्त को समझते देर नहीं लगी कि वह तो सेल्यूकस निकेटर की बेटी हेलेन के बारे में बातें कर रहा है। उसने यह भी महसूस किया कि हेलेन का रंग-रूप बताते वक्त चंद्रगुप्त बार-बार खयालों में खो जाता था। दोस्त की अनुभवी आंखों के लिए अब यह राज नहीं रह गया था कि चंद्रगुप्त हेलेन के प्यार में पूरी तरह डूब चुका है और उससे मिले बिना इसे चैन नहीं मिलने वाला। अपने दोस्त और सम्राट की यह दशा उससे देखी नहीं जा रही थी। उसने चंद्रगुप्त से हेलेन के नाम मुहब्बत का पैगाम लिखने के लिए अर्ज किया और इजाजत लेकर वहां से चल दिया। चलते समय उसने सम्राट से कहा कि वह थोड़ी देर में लौटेगा, तब तक वह अपना पैगाम लिख डालें। दोस्त के जाने के बाद चंद्रगुप्त हेलेन के नाम प्रेम-पत्र लिखने बैठ गया।

जब तक दोस्त वापस आया, चंद्रगुप्त हेलेन के नाम प्रेम-पत्र लिख चुका था। दोनों बातचीत करने लगे। अचानक चंद्रगुप्त ने महसूस किया कि उसका दोस्त उससे कुछ छुपाने की कोशिश कर रहा है। चंद्रगुप्त ने आंखों-आंखों में ही सवाल किया कि वह क्या छुपा रहा है तो दोस्त ने हंसते हुए उसे सामने कर दिया। चंद्रगुप्त ने देखा कि उसके हाथ में एक सुंदर-सा कबूतर है। उसके दोस्त ने बताया कि यह कोई साधारण कबूतर नहीं है, बल्कि यह रानी कबूतरी है, जो गुप्त संदेश लाने और पहुंचाने में अत्यंत माहिर है। दोस्त ने यह भी बताया कि पिछले तीन सालों से यह कबूतरी आपके साम्राज्य की सेवा में लगी है और इस दौरान इसने एक भी गलती नहीं की है। यह आपके मुहब्बत का पैगाम सीधे हेलेन तक पहुंचा देगी, आप निश्चित रहें। उधर एक दिन हेलेन अपने महल के बरामदे में अन्यमनस्क भाव से अकेले टहल रही थी। उसकी विश्वस्त महिला गुप्तचर ने उसे बता दिया था कि वह युवक कोई और नहीं, बल्कि स्वयं मगध सम्राट चंद्रगुप्त हैं। अचानक हेलेन ने देखा कि एक कबूतरी तेजी से उड़ती आई और उसके सामने बरामदे में बैठ गई। पहले तो हेलेन ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया लेकिन धीरे-धीरे वह कबूतरी हेलेन के पास आ गई। अब हेलेन ने देखा कि उसके गले में कोई कागज का टुकड़ा लटक रहा है। उसने उत्सुकता से कबूतरी की तरफ जब अपना प्यार भरा हाथ बढ़ाया तो वह सिमट कर और भी पास आ गई। हेलेन ने उस कागज को कबूतरी के गले से निकाला और उसे देखने लगी। उसे यह देख कर

आश्चर्य हुआ कि उस कागज पर खूबसूरत यूनानी अक्षरों में कुछ लिखा है। वह पढ़ने लगी। पहला वाक्य पढ़ते ही उसके कपोल गुलाबी हो गए। वह कबूतरी से भी लजाने लगी। अपने पत्र में चंद्रगुप्त ने अपना हृदय निकाल कर रख दिया था। हेलेन पत्र पढ़ती जाती और रोती जाती... खुशी के आंसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे। उसने चंद्रगुप्त के पत्र को न जाने कितनी बार पढ़ा, लेकिन पढ़ने से उसका मन ही नहीं भर रहा था। चंद्रगुप्त का रोबीला रूप उसके सामने आ गया, वह उसका पान करने लगी—आंखें बंद कर। चंद्रगुप्त का चेहरा उसकी आंखों से ओझल होने का नाम ही नहीं ले रहा था...वह खुद भी तो ओझल होने देना नहीं चाहती थी। चंद्रगुप्त के खयालों से आज़ाद होने के लिए वह तैयार ही नहीं थी, लेकिन तब तक रानी शोर मचाने लगी। रानी अपनी हरकत से हेलेन को समझाना चाह रही थी कि उसे अब लौटना होगा, क्योंकि पहले ही काफी देर हो चुकी है। उसने गर्दन की जुंबिश से यह भी बयान किया कि उसे जवाब भी ले जाना है।

हेलेन जवाब लिखने बैठ गई...लेकिन मुश्किल आन पड़ी कि लिखे क्या। फिर भी चंद्र पंक्तियों में ही उसने वह सब कुछ लिख दिया, जिसके लिए कभी-कभी किताबें भी कम पड़ती हैं। उसने लिखा, 'मैं तो सिर्फ आपकी अमानत हूँ, आइए और मुझे ले जाइए। आपके बिना जीना गवारा नहीं... पर मन भय से कांपता है कि कहीं हमारा प्यार मेरे पिता को स्वीकार होगा भी या नहीं... मुझे लगता है कि मेरे पिता हमारे मिलन के लिए तैयार नहीं होंगे, पर क्या एक बार... सिर्फ एक बार, हमारी मुलाकात नहीं हो सकती है?' मुलाकात कैसे नहीं होती... कहते हैं न कि अगर किसी को सच्चे दिल से प्यार किया जाए तो सारी कायनात उसे मुकम्मल करने में जुट जाती है, वही इन प्रेमियों के साथ हुआ। लेकिन थोड़ी नाटकीयता के साथ।

सेल्यूकस निकेटर (निकेटर का अर्थ विजेता है) अपने साम्राज्य के आंतरिक कलह से परेशान था। बेबिलोनिया से लेकर भारत तक उसके साम्राज्य के स्थानीय क्षत्रप बगावत के बिगुल बजाने लगे थे। इस बीच हेलेन बेबिलोनिया चली गई। चंद्रगुप्त की तो जैसी ज़िंदगी चली गई। क्षत्रपों की बगावत कुचलने के लिए उसे भारत में मदद की ज़रूरत थी और उसकी यह ज़रूरत तब सिर्फ चंद्रगुप्त ही पूरी कर सकता था। लेकिन सेल्यूकस अपनी यह ज़रूरत अपनी शर्तों पर पूरा करना चाहता था यानी मदद मांगने के पहले वह युद्ध भूमि में चंद्रगुप्त को पराजित करने की मंशा रखता था, ताकि मनमानी शर्तों पर समझौता किया जा सके। सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त को पराजित करने के लिए एक बड़ी फौज जुटायी और ईसा पूर्व 312 ई में चंद्रगुप्त के खिलाफ युद्ध

छेड़ दिया, लेकिन उसकी चाहना के विपरीत इस युद्ध में सेल्यूकस को जबर्दस्त शिकस्त मिली। वह बंदी बना लिया गया। सेल्यूकस को लगा कि उसका अंत आ चुका है, क्योंकि वह जानता था कि उसने जो काम किया है, उसके लिए उसे चंद्रगुप्त माफ नहीं करने वाला। रहम की कोई गुंजाइश उसे नहीं दिखायी दे रही थी, लेकिन उसे तब घोर आश्चर्य हुआ, जब चंद्रगुप्त ने न सिर्फ उसका कुसूर माफ कर दिया, बल्कि उसने यह भी कहा कि विद्रोहियों को दबाने में उनकी मदद भी करना चाहता है। सेल्यूकस अपने को चंद्रगुप्त के एहसान तले दबते महसूस कर रहा था और मन ही मन उसकी सराहना कर रहा था। एहसान से दबे सेल्यूकस ने पूछा, 'आप मेरे योग्य कोई सेवा बताएं, मैं तन-मन-धन से उसे पूरा करने की कोशिश करूंगा।' चंद्रगुप्त ने कहा कि भगवान की कृपा से उसके पास सब कुछ है... थोड़ी देर रुक कर फिर कहा, 'बस, मेरे पास सिर्फ एक चीज नहीं है, लेकिन वह आपके पास है... अगर मैं वह मांगू तो क्या आप दे सकते हैं... समझिए, ज़िंदगी का सवाल है।' सेल्यूकस ने कहा, 'सम्राट, अगर यह आपकी ज़िंदगी का सवाल है, तब तो मैं इसे मौत की कीमत पर भी आपके हवाले कर दूंगा।' चंद्रगुप्त ने बड़ी शालीनता से कहा, 'अगर मैं आपकी बेटी हेलेन का हाथ मांगू तो क्या आप स्वीकार करेंगे।' थोड़ी देर के लिए तो वह चकरा-सा गया लेकिन जल्दी ही संभल गया और उसके चेहरे पर एक गहरी खामोशी छा गई। सेल्यूकस ने कहा, 'मुझे हेलेन का हाथ आपके हाथ में देने में कोई गुरेज नहीं, लेकिन उसकी रजामंदी तो जाननी ही होगी।' सेल्यूकस सोच रहा था कि उसकी बेटी किसी हिंदुस्तानी को अपने शौहर के रूप में अपनाने के लिए शायद राजी न हो, लेकिन तब उसे घोर आश्चर्य हुआ, जब उसने अपनी बेटी से चंद्रगुप्त के साथ विवाह के बारे में पूछा और जवाब में हेलेन ने खुशी-खुशी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसने चंद्रगुप्त के साथ हेलेन की शादी की इजाजत दे दी।

लिखने वाले लिखते हैं कि चंद्रगुप्त बड़ी आन-बान के साथ हेलेन से विवाह करने पहुंचा था। उसकी बारात इतनी भव्य थी कि उसी से उसके सम्राट होने का पता चल रहा था। विवाह के बाद चंद्रगुप्त हेलेन को लेकर पाटलीपुत्र आ गया। यही हेलेन बिंदुसार की मां बनी। महान सम्राट अशोक बिंदुसार का बेटा था यानी हेलेन सम्राट अशोक की दादी थी। एक तरह से चंद्रगुप्त और हेलेन की शादी यूनानी और भारतीय संस्कृति का मिलन थी और संदेश यह कि युद्ध पर प्यार भारी पड़ता है। लेकिन सेल्यूकस अंत तक नहीं जान पाया कि उसकी बेटी और चंद्रगुप्त के बीच इतना महान प्रेम पल रहा था।

## सावित्री बाई फुले (1831-1897)

■ प्रमिला दंडवते

हमारी दृष्टि में 1848 दो कारणों से एक क्रांतिकारी वर्ष है। पहला तो यह कि उस वर्ष मार्क्स और एंजिल्स ने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र (मैनिफेस्टो) प्रकाशित किया, जिसने समूचे विश्व को हिला दिया तथा दुनिया भर के सताये व कुचले हुए लाखों लोगों को अपनी नियति बदल डालने के लिए प्रेरित किया; और दूसरा यह कि महाराष्ट्र राज्य के पुणे नगर में शुरू की गयी सामाजिक क्रांति की जननी सावित्री बाई फुले ने रूढ़िपंथियों द्वारा किये गए घोर विरोध तथा उनके द्वारा डाली गयी दुर्लघ्य बाधाओं के बावजूद प्रथम महिला विद्यालय की नींव रखी।

सावित्री बाई का जन्म महाराष्ट्र के सतारा जिले में नैगांव के एक संपन्न किसान परिवार में 3 जनवरी, 1831 को हुआ था। वे सुंदर और स्वस्थ थीं। 9 वर्ष की आयु में उनका विवाह ज्योतिबा फुले के संग हुआ। ऊंची जाति के लोगों ने विवाह संस्कार के अवसर पर उनके पति ज्योतिबा को अपने से नीची जाति में विवाह करने के लिए अपमानित किया, जिससे वे इतने क्षुब्ध हो उठे कि उन्होंने दलित वर्ग को गरिमा दिलाने के लिए समाज पर उच्च जाति के प्रभुत्व के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रतिज्ञा कर ली। उन्होंने जीवन भर हर प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि व्यक्ति के विकास के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता शिक्षा है। उन्होंने स्वयं हिंदू धर्म ग्रंथों का गहन अध्ययन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि समस्त मनुष्य एक समान जन्मे हैं तथा असमानताएं मनुष्य ने उत्पन्न की हैं। वे ऐसा मानते थे कि असमानताओं को प्रश्रय देने वाली मान्यताओं का उदय उच्च जातियों के रूढ़िवादियों से होता है। उच्च जातियों ने समस्त शिक्षा संस्थाओं पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया तथा अन्य जातियों को उससे वंचित कर दिया। निर्धनता, अज्ञान और शिक्षा के अभाव के कारण व्यापक असमानताएं उत्पन्न हो गयी थीं।

ज्योतिबा विधवाओं और पुरुषों द्वारा सतायी जाने वाली अन्य महिलाओं की दुर्दशा नहीं सह सकते थे। उनकी मुसीबतों के मूल कारण अज्ञान और अशिक्षा थे। अतः उन्होंने स्त्रियों को जिन्हें अज्ञान के अधियारे में रखा गया, शिक्षा प्रदान करने का संकल्प लिया।

ज्योतिबा के योगदान को तभी सराहा जा सकता है जब हम उस कालखंड में महिलाओं और अछूतों की स्थिति को समझते हों। वे पुणे को अपनी राजधानी बनाकर शासन करने तथा समाज पर अपनी छाप डालने वाले पेशवा शासन की रीति-नीति के सबसे अंधकारपूर्ण दिन थे। उस समय स्त्रियों को पुरुषों के उपभोग की वस्तु माना जाता था। अनुसूचित जातियों की स्त्रियों को निर्वस्त्र नृत्य करने के लिए विवश किया जाता था। अछूतों के प्रति अपमानजनक व्यवहार होता था। उन्हें सुबह-शाम सड़कों पर

निकलने की मनाही थी जिससे कि उनकी लंबी परछाइयां उच्च जाति के लोगों को 'अपवित्र' न कर सकें। उन्हें अपनी कमर पर पेड़ की एक डाली बांधनी पड़ती थी जिससे सड़क पर गुजरते हुए वह डाली उस स्थान को बुहारती उनके पीछे-पीछे घिसटती जाए। उन्हें अपनी गर्दन में एक थूकदान लटकाना पड़ता था, जिससे कि उनका थूक सड़क को गंदा न कर पाए। उन्हें अपने साथ एक घंटी ले जानी पड़ती थी, जिससे कि उच्च जाति के लोग उसकी आवाज़ सुनकर उधर से जाते समय अपना रास्ता बदल लेते। अछूतों को पवित्र मंत्रों का उच्चारण सुनने तक की अनुमति न थी।

ज्योतिबा ने समाज में फैली हुई अज्ञानता के विरुद्ध संघर्ष करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने स्त्रियों को शिक्षित करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने सोचा कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्हें शिक्षिकाओं की आवश्यकता होगी, अतः सबसे पहले अपनी पत्नी को पढ़ाने और प्रशिक्षण दिलाने का निश्चय किया। ज्योतिबा को प्रतिदिन काम करने खेत पर जाना होता था। तीसरे प्रहर उनकी पत्नी उनका भोजन पहुंचाने के लिए खेत पर आती थीं। ज्योतिबा ने उस अवसर का लाभ उन्हें पढ़ाने के लिए उठाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे यह समाचार उनके पिता के कानों तक पहुंच गया। उन्होंने रूढ़िवादी तत्वों के आक्रमण के भयवश अपने बेटे को घर से निकालने की धमकी दी।

सावित्री बाई को तय करना था कि वे अपने पति के साथ जाएंगी या ससुराल में रहेगी। उन्होंने पति के संग रहना ठीक समझा।

ज्योतिबा ने उन्हें पढ़ाना जारी रखा। उसके पश्चात् उन्हें प्रशिक्षण विद्यालय में भरती कराया गया जहां से वे एक मुस्लिम महिला फातिमा शेख के साथ ऊंचे अंक प्राप्त करके उत्तीर्ण हुईं। अध्ययन पूरा हो जाने पर सावित्री बाई ने अपने पति के साथ मिलकर 1848 में पुणे में एक बालिका विद्यालय स्थापित किया। विद्यालय में प्रवेश लेने वाली नौ लड़कियां अलग-अलग जातियों की थीं। सावित्री बाई का सवेरे घर से निकलकर विद्यालय पहुंचना अत्यंत दूभर था। रूढ़िवादी समाज इस दुस्साहस को सहन करने के लिए तैयार न था। नारी शिक्षा पर नाक-भौं सिकोड़ी जाती थी। ऐसा माना जाता था कि यदि कोई स्त्री लिखना शुरू कर देगी तो वह सब लोगों को पत्र लिखने लगेगी। उनका दावा था कि उसके पति का भोजन कीड़ों में बदल जाएगा तथा उसकी अकाल मृत्यु हो जाएगी।

पुरुष-प्रधान जगत में विरोध पर विजय प्राप्त किए बिना कुछ भी प्राप्त करना महिलाओं के सम्मुख एक चुनौती भरा कार्य रहा है। कहा जाता है कि सावित्री बाई जब घर से बाहर जातीं तो पुराणपंथी पुरुषों के झुंड उनके पीछे लग जाते। वे उन पर सड़े हुए टमाटर, अंडे,

गोबर और पत्थर फेंकते। वे सिर झुकाये चलती जातीं और विद्यालय पहुंच जातीं। इस व्यवहार से वे ऊब गयीं और उन्होंने पढ़ाना बंद करने का निर्णय तक कर डाला। परंतु अपने पति के प्रोत्साहन पर अपना प्रयास जारी रखा। ज्योतिबा ने उन्हें दो साड़ियां दीं। मोटी साड़ी विद्यालय जाते समय पहनने के लिए थी, जिस पर उन्हें समाज द्वारा फेंकी गयी सारी गंदगी झेलनी थी। दूसरी साड़ी विद्यालय पहुंचने पर कक्षा आरंभ होने से पहले बदलने के लिए थी। घर लौटते समय वे गंदी साड़ी को पुनः धारण कर लेतीं। यह यंत्रणा एक लंबे समय तक चली और तब समाप्त हुई जब सावित्री बाई को उस व्यक्ति को थप्पड़ जड़ना पड़ा जिसने उनके साथ हाथापाई करने की कोशिश की थी। उस थप्पड़ ने उनकी यंत्रणा को समाप्त कर दिया और वे पढ़ाती रहीं। धीमे किंतु निरंतर प्रयास से वे अपने कार्य में सफल हो गयीं। उन्होंने और अधिक विद्यालय खोले अंततः ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में उनके कार्य के लिए उन्हें सम्मानित किया। 1852 में सरकार की ओर से ज्योतिबा और सावित्री बाई दोनों का अभिनंदन विश्रामबाग में किया गया तथा उन्हें शॉल ओढ़ाये गये।

सावित्री बाई ने अपने पति को शिक्षा संबंधी गतिविधियों में सहयोग देने के अतिरिक्त उनके द्वारा छोड़े गए प्रत्येक सामाजिक संघर्ष में उनका साथ दिया। एक बार ज्योतिबा ने एक महिला को नदी की ओर जाते हुए देखा वे उसके पीछे-पीछे चल दिए। उनके मन में संदेह उत्पन्न हो गया कि वह आत्महत्या करना चाहती हैं। वह नदी तट पर पहुंची तब तक ज्योतिबा भी वहां पहुंच गए तथा घर लौटने के लिए समझा-बुझा कर तैयार कर लिया। उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि वे अपने आपको उस बालक का पिता समझेंगे जो उसकी कोख में पल रहा है। बहुत समझाने-बुझाने पर ही उसे उनकी बात पर विश्वास हुआ। उसके बाद उसे घर लाया गया जहां सावित्री बाई ने उसके बच्चे के प्रसव में मदद देने का वचन दिया। उस बच्चे को सावित्री बाई और ज्योतिबा ने गोद ले लिया। उसका नाम यशवंत रखा गया, जो पढ़-लिखकर डॉक्टर बना तथा ज्योतिबा की चिता को उसी ने अग्नि दी।

इस घटना ने इस युग के लिए नये क्षितिज खोल दिये। वे हिंदू समाज में विधवाओं की दशा पर चिंतित हुए। उन अनेक विधवाओं को आत्महत्या की ओर धकेलने के लिए वे पुरुष जिम्मेदार होते थे जो अपनी वासना की पूर्ति के लिए उनका शोषण करते तथा बाद में उन्हें अकेली छोड़ देते थे। अतः सावित्री बाई और ज्योतिबा फुले ने उन स्त्रियों के लिए स्थापित किए गए 'प्रसूति गृह' का प्रचार सड़क पर बोर्ड लगाकर किया, जिन पर गर्भ लाद दिया गया था। प्रसूति गृह का नाम रखा गया था 'बालहत्या प्रतिबंधक गृह'।

उनका अगला कदम भी इतना ही क्रांतिकारी था। उस ज़माने में छोटी उम्र की लड़कियों का विवाह बूढ़ों के साथ कर दिया जाता था। बुढ़ापे अथवा किसी रोग के कारण पुरुषों की मृत्यु होने पर उनकी पत्नियां अल्पायु में ही विधवा हो जाती थीं। विधवाएं सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग नहीं कर सकती थीं। उनके लिए श्रृंगार करने की मनाही थी। उनके सिर मुंडवा दिये जाते थे तथा समाज द्वारा उन्हें त्यागपूर्ण जीवन बिताने के लिए विवश किया जाता था। सावित्री बाई और ज्योतिबा का हृदय ऐसी विधवाओं की दयनीय दशा पर

द्रवित हो उठा। उन्होंने नाइयों को धिक्कारा तथा नाइयों की हड़ताल का संगठन किया और उन्हें इस बात के लिए तैयार किया कि वे विधवाओं के सिर मुंडन न करें। वह अपने ढंग की पहली और अनूठी हड़ताल थी।

ज्योतिबा और सावित्री बाई समस्त प्रकार के सामाजिक पक्षपात के विरुद्ध थे। वे उन अछूतों को देखकर द्रवित हो उठते थे जिन्हें उस जल से वंचित कर दिया जाता था जो सवर्णों के लिए संरक्षित कर दिया गया था। ज्योतिबा और सावित्री बाई ने अपने घर के भीतर संचित जल भंडार उन लोगों के लिए खोल दिया। उनकी करनी और कथनी में अंतर न था।

सावित्री बाई के भाई ने जब अछूतों तथा अन्य तथाकथित निम्नतर जातियों के साथ घुलने-मिलने के लिए ज्योतिबा की आलोचना की तो सावित्री बाई ने उन्हें एक पत्र लिखा जो अभी तक उपलब्ध है। उन्होंने लिखा : "मुझे अपने पति पर उनके कार्यों के लिए गर्व है। तुम्हें उनकी आलोचना करने की हिम्मत कैसे हुई? तुम अपनी गोद में कुत्ते-बिल्लियों को चढ़ाते हो परंतु मनुष्यों के स्पर्श से तुम्हें लगता है कि तुम अपवित्र हो गए। मेरे पति सच्चे अर्थ में एक महान पुरुष हैं क्योंकि वे अपने सभी साथियों को अपने समान मानते हैं।"

सावित्री बाई अपने पति द्वारा हाथ में ली गयी प्रत्येक गतिविधि में भाग लेती थीं। वे उनके साथ मिलकर कष्ट झेलती थीं तथापि, उनका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व था। ज्योतिबा एक महापुरुष थे। उन्होंने जो कुछ सीखा उसका अपने जीवन में पालन किया, दूसरे लोग वैसा नहीं कर पाए। वे भविष्य को देखने में समर्थ थे। उन्होंने दलित वर्ग के उत्थान के लिए अनथक परिश्रम किया। ज्योतिबा फुले ने 1890 में शरीर छोड़ दिया।

उनके निधन के पश्चात् सावित्री बाई ने ज्योतिबा फुले द्वारा स्थापित सत्यशोधक मंडल का दायित्व स्वयं संभाल लिया। वे सभाओं की अध्यक्षता और कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन करतीं। उन्होंने प्लेग-पीड़ितों को राहत पहुंचाने के लिए कठोर परिश्रम किया। उन्होंने निर्धन बच्चों के लिए शिविर लगाए। कहा जाता है कि महामारी के दौरान वे प्रतिदिन दो हज़ार बच्चों को भोजन कराती थीं। इसे नियति का क्रूर व्यंग्य ही कहा जाएगा कि एक बालक की सेवा करते समय प्लेग ने उन्हें अपना शिकार बना लिया और 10 मार्च, 1897 को उनके प्राण ले लिए।

सावित्री बाई की कविताएं और अन्य रचनाएं आज तक दूसरों के लिए प्रेरणादायी हैं। पंडिता रमाबाई के जन्म से दस वर्ष पूर्व पिछड़ी हुई माली जाति में उत्पन्न हुई महिला ने अपने आपको सबसे अधिक क्रांतिकारी और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया। वे प्रथम महिला शिक्षिका, प्रथम महिला शिक्षाविद्, प्रथम कवयित्री तथा महिलाओं की प्रथम मुक्तिदात्री थीं। उनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए-1934 में 'काव्य फुले' तथा 1982 में 'बावन काशी सुबोध रत्नाकर'।

सावित्री बाई ने यंत्रणाएं न सही होतीं तो भारतीय महिलाओं को समाज में वह स्थान न मिला होता जो आज उन्हें प्राप्त हैं।

साभार : भारतीय पुनर्जागरण में अग्रणी महिलाएं

## भारत में इस्लाम का आगमन तथा दिल्ली सल्तनत

■ मुक्तिबोध

...पिछले अंक से जारी

भारत में इस्लाम के आगमन से नये युग का सूत्रपात होता है, दिल्ली में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो जाती है। केन्द्रीय शासन से मुक्त होकर, टुकड़ों-टुकड़ों में बंटकर बिखर जाने की ऐतिहासिक-राजनैतिक प्रवृत्ति उस समय भी जारी रहती है। प्रांतीय मुस्लिम राज्यों का विकास होता है। प्रारंभ में, खोयी हुई अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त करने की कोशिशें राजपूतों द्वारा की जाती हैं, नये स्वतंत्र राजपूत राज्य बन जाते हैं। तैमूरलंग के आक्रमण सिद्ध कर देते हैं कि मुस्लिम सल्तनत की नींव कितनी कमज़ोर है।

### हज़रत मुहम्मद

सन् 570 में हज़रत मुहम्मद के जन्म के पूर्व, अरब जाति अज्ञान के अंधकार में पड़ी हुई थी। मुहम्मद साहब कुरैश जाति में जन्में। जन्म के उपरांत ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी। अपने काका अबू तालिब की देख-रेख में उन्हें शिक्षा दी गयी। नवयुवक होने पर, वे सीरिया चले गये, वहां उन्हें एकेश्वरवाद की विचारधारा प्राप्त हुई। एक दिन उन्हें इलहाम (ईश्वरीय संदेश) मिला। उन्होंने अरबों में एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उन्होंने मूर्तिपूजा के विरुद्ध उपदेश देते हुए कहा कि ईश्वर एक है, और सबको उसमें श्रद्धा रखनी चाहिए, और उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। उनके कुरैश कबीले के लोग उन पर बिगड़ पड़े, उन्हें मार डालने की ठानी। इस पर मुहम्मद साहब सन् 622 में मदीना आ गये। उस तिथि से इस्लाम का हिजरी सन् शुरू होता है।

इस्लाम का अर्थ है-‘शांति’ अथवा ‘ईश्वरीय इच्छा के प्रति समर्पित होना।’ इस्लाम से ही, मुसलमान शब्द बना जिसका अर्थ होता है, इस्लाम का अनुयायी।

इस्लाम धर्म सरल है। ईश्वर तथा उसके दूत (मुहम्मद साहब) में श्रद्धा रखना, तथा नैतिक आचरण करना और धर्म के नियमों के अनुसार, सतर्कतापूर्वक जीवनयापन करना ही इस्लाम है। ईश्वर का कोई आकार नहीं है, वह निर्गुण है; किंतु वह जगत् का कर्ता और अनुशासक है। जितने भी जीव हैं सब उसके ‘बन्दे’ हैं, अर्थात् दास हैं। इन बन्दों का यह कर्तव्य है कि वे ईश्वर की इबादत (पूजा) करें। ईश्वर की प्रार्थना के लिए, किसी मध्यस्थ पुरोहित की आवश्यकता नहीं। हज़रत मुहम्मद केवल उस ईश्वर के संदेशवाहक हैं। एक सुनिश्चित दिन, ईश्वर न्यायदान करता है; मुहम्मद साहब पवित्र आत्माओं की ओर से

उनकी सिफ़ारिश करते हैं। जो पापी हैं उन्हें दोज़ख़ (नरक) भेजा जाता है, जो पुण्यात्मा हैं, वे जन्नत (स्वर्ग) पहुंचते हैं। जन्नत में पुण्यात्माओं को सभी सुख प्राप्त होते हैं।

मुहम्मद साहब समय-समय पर समाधिस्थ हो जाते। समाधि से जागने पर, उनके मुंह से बोल निकल पड़ते। उनके वचनों का जो संग्रह है, उसे कुरान कहा जाता है। वह मुसलमानों का पवित्र ग्रंथ है। दिन में पांच बार नमाज़ पढ़ना, साल में रमज़ान महीने के सब दिन व्रत रखना, अपनी आय में से प्रतिवर्ष दान देना, भले ही वह बहुत थोड़ा क्यों न हो, मुस्लिम समाज के कल्याण के लिए एक निश्चित कर चुकाना आवश्यक है। अपने जीवन में एक बार मक्के की यात्रा करना भी ज़रूरी है- यह यात्रा ‘हज’ कहलाती है।

इस्लाम ‘शांति का मार्ग’ है। उसके भीतर, सब एक-बराबर हैं- स्त्री और पुरुष, गरीब और अमीर, शासक और शासित। धर्म के अंतर्गत सामाजिक समानता है। ईश्वर और उसके रसूल को न मानना कुफ़्र है। जो कुफ़्र करते हैं, वे काफ़िर हैं। काफ़िरों को धर्म के अंतर्गत लाना पुण्यकार्य है।

मुहम्मद साहब समाज-सुधारक थे। आपस में मार-काट मचाने वाली अरब जाति क्रमशः इस्लाम-‘शांति के मार्ग’- पर अग्रसर हो गयी। मुहम्मद साहब ने मदिरा सेवन, जुआ खेलना आदि बुराइयों को दूर किया, और अरबों में एक नयी शक्ति उत्पन्न कर दी। उन्हें संगठित और एकताबद्ध कर दिया। अरब समाज अग्रसर हो उठा।

हज़रत मुहम्मद केवल समाज-सुधारक या धर्म-संस्थापक ही नहीं थे, वे अरबों के राष्ट्रीय नेता भी थे। उन्होंने विविध अरब राज्यों का अन्त कर दिया और सबल जातीय राज्य की स्थापना की। सन् 632 में उनका देहान्त हो गया।

उनके उत्तराधिकारी खलीफ़ाओं (धर्म-राजों) के समय, अरबों ने अपनी दिग्विजय यात्रा आरंभ की। इधर, पूरब में वे भारत के उत्तर की तरफ पहुंच गये, उधर वे एशिया मायनर और इजिप्ट पादाक्रान्त करते हुए, उत्तर अफ्रीका के किनारे-किनारे आगे बढ़ते चले गये। शीघ्र ही उन्होंने मोरक्को पर विजय प्राप्त कर ली और यूरोप के एक देश स्पेन को अपने कब्जे में कर लिया। इस प्रकार, आठवीं सदी के पूर्व ही, उनका साम्राज्य स्पेन से पामीर तक फैल गया।

### दक्षिण भारत में अरब आगमन

अब उन्होंने भारत की तरफ नज़र घुमायी। उत्तर-पश्चिम के मार्ग से आने के पहले, उनकी, जल-सेना दक्षिण-पश्चिम के समुद्र

तट पर आ लगी थी। अरब बहुत अच्छे मल्लाह थे, साहसी व्यापारी थे, उनकी बस्तियां न केवल अरबस्तान में वरन् अफ्रीका के समुद्री तट पर भी थीं। इस्लाम के जन्म के पूर्व ही, बहुत-से अरब दक्षिण भारत के समुद्रतटीय नगरों में आबाद थे। इस्लाम के आरंभ के बाद, नवीं सदी में, वे पश्चिमी समुद्र तट पर फैल गये। व्यापारी होने के नाते उनका भारत में खूब स्वागत किया गया, उन्हें तरह-तरह की सुविधाएं दी गयीं। मालाबार के हिन्दू राजाओं ने उन्हें प्रभाव के पद और विशेषाधिकार दिये। कालीकट के जामोरिन ने उन्हें खूब प्रोत्साहन दिया। सौराष्ट्र के बलभी राजा ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। अरबों के बहुतेरे नेता, भारतीय राज्यों में, मंत्री, जल-सेनापति, राजदूत और यहां तक कि किसान बन गये। उन्होंने शांतिपूर्वक अपने धर्म का भी प्रचार किया। मस्जिदें बनायीं, कब्रें बनायीं। ये स्थान उनके सन्तों और धर्म-प्रचारकों के केंद्र बन गये। इसके फलस्वरूप, दक्षिण भारत की सांस्कृतिक प्रवृत्तियां इस्लाम से प्रभावित हुईं। दक्षिण भारत में इस्लाम सातवीं सदी के अंत तक पहुंच चुका था।

### अरब आक्रमण

सन् 712 ई. में बग़दाद के खलीफ़ा के एक सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने उत्तर-पश्चिम के मार्ग से भारत पर आक्रमण किया। भारत में उन दिनों कोई ऐसी शक्ति न थी, जो उनके आक्रमण को रोक सके। सिंध का राजा दाहिर लड़ाई में मारा गया। सिंध और पश्चिमी पंजाब का इलाका अरबों के हाथ लगा।

अरबों ने अब भारत के अन्य प्रदेशों पर हमले किये। किंतु, गुर्जर-प्रतिहार और चालुक्य राजाओं ने उन्हें अपनी शक्ति का परिचय दिया। उन्होंने अरब-सेनाओं का मुकाबला करने में अद्भुत वीरता प्रदर्शित की। फलतः, अरबों में पूर्व की ओर बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई।

### सांस्कृतिक संपर्क

राजनैतिक दृष्टि से, अरब, भारत के सर्वप्रथम मुस्लिम शासक थे। भारत के संपर्क में आकर उन्होंने भारतीय विद्याएं सीखीं।

दर्शन, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा-विज्ञान, रसायन-शास्त्र और शासन कला अरबों ने भारत से ली और लेकर सारे यूरोप में, जब कि वह अज्ञान के अंधकार में पड़ा हुआ था, उनका प्रचार किया। मध्य एशिया में बौद्ध काल में ही भारतीय संस्कृति का विस्तार हो चुका था। वहां इस्लाम फैल जाने के अनन्तर, कई लोग जो पहले ब्राह्मण और बौद्ध थे अब मुसलमान हो गये, किंतु उन्हें अभी भी भारत की विद्या और समृद्धि का ज्ञान था। ऐसा ही एक व्यक्ति प्रसिद्ध खलीफ़ा हारून अल रशीद का वज़ीर वरमक था। वह बल्लू का निवासी था, उसके पूर्वज किसी बौद्ध मठ में पदाधिकारी रह चुके थे। वरमक अभी भी भारत के बौद्धों और अन्य विद्वानों से संपर्क स्थापित किये हुए था। उसने विशेष आमंत्रण देकर अनेक भारतीय विद्वानों को बग़दाद बुलाया

और उन्हें उच्च पद प्रदान किये। यह घटना सन् 786 से 809 तक के काल की है। इसके पूर्व, खलीफ़ा मन्सूर (753-774 ई.) ने भी भारत के अनेक विद्वानों, पंडितों और ज्योतिषियों को बग़दाद बुलवाया था और उनके द्वारा भारतीय ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें अरबी में अनुवादित करवायीं।

इस प्रकार, मध्ययुग के अज्ञान-अंधकार में, जब कि यूरोप गहरी नींद ले रहा था, अरबों ने एक ओर यूनान की विद्या, तो दूसरी ओर, भारत की विद्या ग्रहण करके उन्हें और विकसित किया।

अरबों की सत्ता शीघ्र ही क्षीण होने लगी। गुर्जर-प्रतिहार नागभट्ट ने उन्हें पंजाब में थाम कर रखा था। उसी प्रकार सन् 884 ई. में जब उनके एक नेता ने कच्छ पर हमला करने का प्रयत्न किया तो गुर्जर के राजा मिहिरभोज ने उन्हें परास्त कर दिया। सिंध तथा मुलतान का यह अरब साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया। अरबों ने राज्य का प्रशासन ब्राह्मण कर्मचारियों के हाथ में रक्खा था।

### महमूद गज़नवी

अरबों की भारत विजय के उपरान्त, दसवीं सदी के उत्तरार्ध में गज़नी के तुर्क वंश के दो राजा सुबुक्तगीन और उसके पुत्र महमूद गज़नी ने भारत पर आक्रमण किये। उन्होंने पंजाब में शाही वंश के राज्य को नष्ट कर, उसे अपने राज्य में मिला लिया। उसने भारत पर सत्रह आक्रमण किये। यह सही है कि वह कोई स्थायी साम्राज्य नहीं बना सका; किंतु उसके हमलों से यह बात साबित हो गयी कि भारत, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से बहुत कमज़ोर है।

दक्षिण पश्चिम में काठियावाड़ तक उसने धावा मारा और सोमनाथ के मंदिर को उसने तोड़ दिया। मंदिर की मूर्ति में अटूट धन था। मंदिर कापालिकों और अघोरपंथियों तथा तरह-तरह के साधु-संन्यासियों का केंद्र था। सम्पत्ति का हरण करके जब वह लौट रहा था तो धारा नगरी का विख्यात राजा भोज उसके पीछे पड़ गया। महमूद गज़नवी भाग खड़ा हुआ।

यद्यपि अभी भी पराक्रमी राजा वर्तमान थे, फिर भी पश्चिमी पंजाब और सिंध तुर्कों के हाथ में ही रहे। सिर्फ़ यह कहा जा सकता है कि कुछ पराक्रमी राजाओं के कारण वे पूरा भारत सर नहीं कर सके। गज़नवी ने ग्याहरवीं सदी के आरंभ में एक आक्रमण और किया, किंतु उसका विशेष प्रभाव नहीं हुआ।

### मुहम्मद गौरी

गौर वंश के शहाबुद्दीन गौरी ने सन् 1173 में गज़नी फ़तह कर ली। अब इसके बाद, उसने दस वर्ष के भीतर, मुलतान, लाहौर और सिंध पर कब्जा कर लिया। दिल्ली और कन्नौज के चौहान और गहरवाल राजाओं से उसने अनेक युद्ध किये, जिनमें वह बहुत बार हारता रहा। किंतु सन् 1192 में उसने दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर दिया और उसके दो साल बाद कन्नौज के जयचंद्र को। इन दो राजाओं ने आपस में मिलकर कभी उससे युद्ध

नहीं किया। उसके बाद, उसने अजमेर और बनारस को कब्जे में ले लिया। उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक और मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने ग्वालियर, कालिंजर, बंगाल और बिहार को कब्जे में ले लिया।

### दिल्ली का मुस्लिम राज्य

#### गुलाम वंश

गोरी की मृत्यु के पश्चात् उसका दास कुतुबुद्दीन ऐबक, जो योग्य सेनापति था, दिल्ली का शासक बन गया। उसने अपने राज्य का विस्तार किया। वह दास होने के कारण, उसके वंश को गुलाम वंश कहा जाता है। इस वंश में आगे चलकर इल्तुमिश नामक राजा हुआ, जिसको अपने सामन्तों के अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। उसने उनका दमन करके मालवा तथा सिन्ध को राज्य में मिला लिया। उसी वंश में, आगे चलकर, बलबन हुआ, जिसे (एशिया तथा यूरोप में एक के बाद एक विजय प्राप्त करने वाले) प्रसिद्ध मंगोल सम्राट चंगेज़खान की सेनाओं का प्रतिरोध करना पड़ा। उसने अपने प्रान्तपतियों के विद्रोहों को कुचला और हिन्दू राजाओं को दबा डाला। भारत में मुस्लिम साम्राज्य को स्थायी बनाने का उसने प्रयत्न किया। बलबन के बाद, कैकूबाद नामक एक राजा का वध करके, जलालुद्दीन खिलजी नामक एक सरदार दिल्ली के तख्त पर बैठ गया। यह वंश सन् 1206 से 1290 तक रहा आया।

#### खिलजी वंश

जलालुद्दीन के भतीजे अलाउद्दीन ने अपने चाचा का क़त्ल करके खुद को सुल्तान ज़ाहिर किया। अलाउद्दीन खिलजी एक विलक्षण शासक था। वह जितना क्रूर था, उतना चालाक था, जितना चालाक था उतना ही वह स्वतंत्र बुद्धिवाला शासक था। अलाउद्दीन, उत्तर भारत में साम्राज्य की जड़ें मजबूत करके, दक्षिण भारत की तरफ बढ़ा। उसने अनहिलवाड़े के चालुक्य राजा को पराजित किया तथा देवगिरी के यादव राज्य का नष्ट कर डाला। पर वह पूरे राजपूताने को नहीं ले पाया। मेवाड़ तथा अन्य राज्यों ने हम्मीर के नेतृत्व में प्रबल पराक्रम किया था। वहां से असफल होकर ही वह दक्षिण की ओर मुड़ा था।

उसने सारी सत्ता अपने हाथों में केंद्रित कर ली। उसने इस्लामी सिद्धान्त के विरुद्ध यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि राज-प्रबन्ध और सुव्यवस्था का अंतिम उत्तरदायित्व राजा पर है, न कि उलेमा (मुल्लाओं) पर। उसने मुल्लाओं का प्रभाव कम कर दिया। भारत में धर्म-निरपेक्ष राज्य की प्रवृत्ति दिखाने वाला वह पहला शासक है; इसलिए उसका महत्व है। साथ ही, उसने अर्थ-व्यवस्था में भी दखल दिया। चीजों की कीमतें तय कर दी, कोई व्यापारी उससे ज़्यादा कीमत नहीं ले सकता था। उसी प्रकार, उसने सैनिक शासन में भी सुधार किये। अलाउद्दीन खिलजी एक बे-पढ़ा लिखा सिपाही आदमी था, उसमें प्रबन्ध और संगठन की अद्भुत शक्ति थी। उसके बनाये नियमों की अवहेलना करने वालों को वह कठोर दंड देता था।

अलाउद्दीन खिलजी के बाद कोई विशेष महत्वपूर्ण शासक नहीं हुआ। उसके अंतिम राजा को मारकर गयासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठा। यह राजवंश सन् 1290 से 1320 तक चला।

#### तुगलक वंश

गयासुद्दीन तुगलक और उसके पुत्र मुहम्मद तुगलक ने मुस्लिम साम्राज्य को दूर-दूर तक फैला दिया। उन्होंने दक्षिण के द्वार-समुद्र, वारंगल और देवगिरी को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

#### मुहम्मद तुगलक : (1324 से 1353)

यह सुलतान मौलिक सूझ-बूझ का आदमी था। वह फारसी का विद्वान था। दर्शन तथा साहित्य के क्षेत्र में, उसकी बराबरी करने वाला शायद ही कोई राजा हो। वह युद्ध-कला प्रवीण था; साथ ही उसमें जबर्दस्त न्याय-भावना थी। उसे कुछ लोग पागल कहते-उसने अपने कामों से मुस्लिम समाज में लोकप्रियता खो दी थी।

पहली बात तो यह है, न्याय-निर्णय के समय वह यह नहीं देखता था कि कौन बड़ा है, और कौन छोटा है। जहां तक बने वह पक्षपातहीन रहता था। दूसरे, योग्य विदेशी व्यक्तियों को उसने ऊंची जगहें देकर रक्खी थीं। तीसरी बात यह है कि वह पहला मुस्लिम शासक था, जो धर्म के क्षेत्र में उदार था। इसलिए वह कट्टरपंथी मुस्लिमों में अप्रिय हो उठा था। विशाल साम्राज्य का सुव्यवस्थित शासन करने के लिए उसने, साम्राज्य के मध्य में दौलताबाद में राजधानी बनायी। किंतु, जब तरह-तरह की अड़चनें आयीं तो निर्णय बदल दिया। इसी प्रकार, उसने मुद्रा-सुधार किया। वह प्रगतिशील विचारों का था, मौलिक सूझ-बूझ का आदमी था, किंतु जिस समाज का वह शासक था, वह समाज बहुत धीरे चल रहा था; मुहम्मद तुगलक आगे बढ़कर तेज़ बढ़ जाना चाहता था। शायद यही कारण है कि वह पागल कहा गया। फिर भी, जिस शासन को उसने परिचालित किया उसमें उसके व्यक्तित्व की न्याय-भावना, सहिष्णुता और उदारता प्रतिबिंबित हो उठी।

किंतु, उसकी इस उदारता की नीति के फलस्वरूप, असंतुष्ट सरदारों ने विद्रोह कर दिया। राजपूत राजा तो स्वतंत्र होने की राह देख ही रहे थे। परिणामतः उसकी मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा।

#### फ़िरोज़ तुगलक

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद फ़िरोज़ तुगलक गद्दी पर बैठा। उसने विजय की नीति त्याग दी। फलतः, बंगाल, सिंध और दक्षिण फिर स्वतंत्र हो उठे। फ़िरोज़ तुगलक का यह विचार था कि राजा का कर्तव्य केवल राज्य जीतना ही नहीं है, वरन प्रजा को सुखी रखना भी है। उसने लोक-कल्याण के लिए सड़कें बनायीं, नगर बसाये, बाग लगाये।

#### हास

मुहम्मदशाह द्वितीय के ज़माने में मध्य एशिया के एक तुर्क विजेता तैमूरलंग ने भारत पर तूफानी आक्रमण किया। पंजाब पार

करता हुआ वह दिल्ली पर चढ़ दौड़ा। सड़कों पर खून की नदियां बहने लगीं। उसने दिल्ली निवासियों का क़त्ल कर डाला। दिल्ली से वह मेरठ गया। वहां जाकर उसने हाहाकार मचा दिया।

मज़ा यह है कि उस समय दिल्ली का राजा मुहम्मदशाह दूसरा दिल्ली में नहीं था। वह गुजरात में कहीं भटक रहा था। तैमूर ज्यों ही दिल्ली छोड़कर वापिस हुआ कि मुहम्मदशाह फिर अपने तख़्त पर वापिस आ गया; लेकिन उससे उसके साम्राज्य की धाक जाती रही। दिल्ली का तख़्त कमज़ोर हो गया। तब तक अनेक राजपूत राज्य प्रबल हो उठे जिनमें मेवाड़ के राजा प्रमुख थे। तुग़लक़ वंश सन् 1412 में समाप्त हो गया।

### सैयद वंश

तुग़लकों के बाद सैयद ख़िज़र खां गद्दी पर बैठा। इस वंश के सुलतानों की सारी शक्ति सामंतों को दबाने के लिए अनेकानेक युद्ध-यात्राओं और संघर्षों में ही व्यय हो गयी। सन् 1451 में पंजाब के सूबेदार बहलोल लोदी ने दिल्ली के तख़्त पर कब्जा कर लिया।

### लोदी वंश

बहलोल लोदी ने पूर्व में जौनपुर तथा कालपी और दक्षिण की तरफ़ जोधपुर का इलाक़ा जीत लिया। उसके उत्तराधिकारी सब निकम्मे निकले। इब्राहीम लोदी के ज़माने में, जब मुग़ल शासक बाबर ने दिल्ली पर आक्रमण किया, तो उस समय मेवाड़ के राणा ही भारत की प्रमुख शक्ति थे। सन् 1526 में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी परास्त हो गया, और दिल्ली का तख़्त मुग़लों के हाथ में चला गया। यह युग मुहम्मद ग़ोरी के ज़माने से, अर्थात् सन् 1210 से, शुरू हुआ और सन् 1526 तक चलता रहा। गुलाम और ख़िलजी वंश तथा फ़िरोज़ तुग़लक़ तक सुलतान विलासी नहीं हुए थे। किंतु, इन राजाओं ने दक्षिण से जो लूट हासिल की उसका बुरा परिणाम हुआ। अगले शासक विलासी हो गये-खाने-कमाने की ज़रूरत न रही। कुतुबुद्दीन मुबारक नामक एक सुलतान तो स्त्रियों की वेशभूषा में सड़कों पर बाजे-बजाते हुए नाच-गाना करता फिरता था।

### अन्य राज्य

सन् 1350 के बाद, मुहम्मद तुग़लक़ के ज़माने से ही, स्वतंत्र प्रान्तीय शासन कायम हो रहे थे। वे समय-समय पर कुचल दिये जाते थे। किंतु वे फिर उठ खड़े होते। इनमें बंगाल, जौनपुर, मालवा, गुज़रात और दक्षिण का बहमनी राज्य प्रसिद्ध है। मुस्लिम राज्य दिल्ली के सुलतान की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली भी थे। उसी प्रकार, उन दिनों स्वतंत्र राजपूत राज्यों का अभ्युदय हो चुका था। मेवाड़ के राजाओं ने गुजरात और मालवे के मुस्लिम शासकों से युद्ध

करके अपना राज्य विस्तार कर लिया था। इन्हीं दिनों दक्षिण का विजयनगर राज्य सामने आया।

### विजयनगर का उत्कर्ष

अलाउद्दीन ख़िलजी के आक्रमणों ने दक्षिण भारत में राज्य-सत्ताओं को हिलाकर, अराजकता मचा दी थी, जिससे फ़ायदा उठाकर, एक ब्राह्मण विद्वान विद्यारण्य की सहायता से, हरिहर और बुक्क नामक दो वीरों ने सन् 1336 में स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। इस राज्य ने उत्तर में कृष्णा नदी तक और दक्षिण में कन्याकुमारी तक अपना प्रसार किया। इस क्षेत्र में मुस्लिम संस्कृति से अप्रभावित विशुद्ध भारतीय संस्कृति का विकास हुआ, इसलिए राजनैतिक महत्व के साथ, इसका सांस्कृतिक महत्व भी है।

सन् 1509 में कृष्णदेव राय नामक एक राजा ने इस राज्य को और विकसित किया। उसने जर्जर बहमनी राज्य के कुछ हिस्से अधिकार में ले लिये। उसी प्रकार कटक और उड़ीसा की विजय की।

कृष्णदेव राय और उसके बाद के राजाओं के काल में, इस राज्य की समृद्धि और ऐश्वर्य खूब ही बढ़ा। भारत में यही एक ऐसा राज्य था जो चौदहवीं, पंद्रहवीं और सोलहवीं सदी में मुस्लिम प्रभाव को रोके रहा। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध में यह राज्य कमज़ोर होने लगा। फिर भी वह चलता ही गया। मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब की ताक़त ने उसे और क्षीण कर दिया। फलतः, उसके अंतर्गत विभिन्न प्रदेश स्वतंत्र हो बैठे। ये हिन्दू राजा उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ों के प्रभुत्व में आकर समाप्त हो गये।

### राजपूताना

सन् 1303 में अलाउद्दीन ख़िलजी ने चित्तौड़ को जीत लिया था पर उसकी मृत्यु के बाद हम्मीर ने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया और सन् 1325 में चित्तौड़ पर राजपूत ध्वजा लहराने लगी। इधर, कई और राजपूत राज्य कायम हुए। चित्तौड़ के पराक्रमी राणाओं ने दिल्ली के सुलतानों के विरुद्ध सतत, दृढ़ और सफल संघर्ष किया, जिससे अन्य राजपूत राजाओं में उनका सम्मान बढ़ गया। अब बहुत-से राजपूत राज्य उन्हें अपना नेता मानने लगे। मेवाड़ ने राजपूत राज-शक्तियों का नेतृत्व किया। सोलहवीं सदी में राणा सांगा ने ग्वालियर, धौलपुर बयाना के इलाके जीत लिये। उधर उन्होंने मालवा और गुजरात के सुलतानों को पीछे खदेड़ दिया। राणा सांगा ने गुजरात के सुलतान से बड़े-गांव, ईडर, अहमदाबाद तक के इलाके जीत लिये। इस प्रकार बाबर जब दिल्ली के तख़्त पर बैठा तो सबसे पहले उसे मेवाड़ के राजाओं से निपटना पड़ा।

...क्रमशः जारी

साभार : मुक्तिबोध रचनावली, भाग 6

### isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,

62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26177904, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904,

ईमेल : notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए